आनंद शक्ति का विकास कैसे हो

मन बड़ा चंचल है, इसलिए उससे ऐसा कोई काम आसानी से नहीं हो पाता, जिसमें श्रम करना पड़े। श्रम उसकी चंचलता का सबसे बड़ा शत्रु है। श्रम एकाग्र बनाता है। इसी श्रम का दूसरा नाम 'तप' है और इसी कारण—एकाग्र बनाकर उज्ज्वल कर देना, विकारहीन बना देना, चमका देना तप का काम है। तप का आरंभ ही मन को एकाग्र करने के उद्देश्य से होता है। जो फैला है, छिन्न है, उसको एक सिलसिले से जमा देना—पूर्ण बना देना एकाग्रता का लक्षण है। इसलिए जिस समय मानव की प्रवृत्ति तप की ओर होती है, मन की चंचलता कम होना आरंभ हो जाता है। एकाग्रता बढ़ती है। मनुष्य संयमी बन जाता है। यहीं से मन इंद्रियों की ओर से हटकर अंदर की ओर घूमता है और आनंद की ओर अभिमुख होता है।

किसी भी वस्तु में किसी बीज की प्रतिष्ठा करने का काम बुद्धि का है। मन तो सिर्फ अनुभव करने का यंत्र मात्र है, इसलिए आनंद का स्वाद सिर्फ मन के द्वारा ही नहीं लिया जा सकता। उसके लिए बुद्धि को भी उसका उपयुक्त पात्र बनाना होता है। शुद्ध आनंद के लिए शुद्ध-बुद्धि की आवश्यकता होती है। बुद्धि की शुद्धि मन को भी अचंचल बना देती है और उसे विकारी होने से भी बचा लेती है।

मन और बुद्धि इस शरीर के दो झरोखे हैं। मूल तत्त्व इससे भी विलक्षण है। इसका नाम चित्त है। चित्त ही वस्तुतः संस्कारों को ग्रहण करता है। चित्त को जैसा ये दोनों यंत्र बना देते हैं, मनुष्य वैसा ही बनता जाता है, उसके अंदर वैसे ही संस्कार पड़ते जाते हैं। इसलिए जब भी कभी संस्कार बनने की चर्चा की जाती है, तब इस चित्त का ही जिक्र होता है। जैसे-जैसे संस्कार बनते जाते हैं, मन और बुद्धि वैसे-वैसे ही काम करते जाते हैं।

जून-1950 (पेज- 30)

क्रमशः गायत्री परिवार की गायत्री-साधना

गायत्री परिवार की गायत्री-साधना—सबल, सुदृढ़ और समर्थ होकर संवर्द्धित होने लगी। अखण्ड ज्योति की ज्ञानज्योति के प्रकाश में पाठक बने। अखण्ड ज्योति की आत्मज्योति के संस्पर्श ने उन्हें साधक बनाया। अब गायत्री तपोभूमि के तपोनिष्ठ-तपोमूर्ति के तप ने सबको गायत्री तप-साधना के लिए प्रेरित-प्रवर्तित व प्रकाशित किया। इस प्रवर्तन से महापरिवर्तन भी हुआ। अखण्ड ज्योति परिवार, गायत्री परिवार में परिवर्तित हो गया। यह प्रबुद्ध गायत्रीसाधकों का परिवार बना। इसके सभी सदस्य स्वयं में महाविद्या गायत्री का तप संवर्द्धित करने में संलग्न हो गए। बूँद-बूँद से घट भरने की बात कही-सुनी जाती है। यहाँ तो गायत्री परिवार की गायत्री-साधना, घट की सीमित सीमा को पार कर साधना-सागर के रूप में लहराने लगी। गायत्री परिवार के सभी गायत्रीसाधकों को, उनके मार्गदर्शक गुरु-पिता ने अपनी साधना को त्रिआयामी बनाने की बात बताई थी। इनमें से एक आयाम—आत्मकल्याण के लिए, दूसरा आयाम—घर-परिवार के कल्याण के लिए, तीसरा आयाम—लोक-कल्याण के लिए नियोजित करना था। कठिन समय में गायत्री परिवार के समर्थ गायत्रीसाधकों ने अपने मार्गदर्शक गुरु-पिता के साथ कठोर परीक्षाएँ दीं। अष्टग्रही योग, चीन आक्रमण और भी समय-समय पर आए दुर्योगों को गायत्रीसाधकों ने अपने समर्थ गुरु के साथ मिलकर परास्त कर दिया। प्रत्येक कठिन कसौटी पर गायत्री परिवार के गायत्रीसाधकों का समूह खरा प्रमाणित हुआ। उनके सम्मिलित तप-तेज के सामने अँधेरे की कोई आँधी ठहर न सकी। ❑

विषय

❊	आवरण—1	1
❊	आवरण—2	2
❊	गायत्री परिवार की गायत्री-साधना	3
❊	**विशिष्ट सामयिक चिंतन**	
	नशाबंदी अभियान	5
❊	धर्म का मर्म	7
❊	आदर्श व्यक्तित्व के तीन स्तंभ	10
❊	गीता का संदेश	13
❊	अनुत्तर योगी बनने का पथ	15
❊	योग	19
❊	**पर्व विशेष—गायत्री जयंती**	
	श्रेष्ठ और सर्वोपरि है गायत्री-उपासना	20
❊	प्रसन्न लोगों के जीवन सूत्र	23
❊	पांडा का रोचक संसार	26
❊	जिम्मेदार जीवन जिएँ	29
❊	शांति का जन्मदाता भारत	30
❊	अनजान न बनें, सीखने के लिए तैयार रहें	32
❊	गंगोत्तरी से तपोवन की यात्रा	34

जीवनमूल्यों पर आधारित शिक्षा 38
भविष्य का धर्म—विश्वबंधुत्व 41
ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—194
सोशल मीडिया के मनोवैज्ञानिक प्रभाव 43
युगगीता—301
कर्म कोई-सा भी हो—साधन पाँच ही हैं 46
विश्वविद्यालय परिसर से—240
विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ाते
इसके विद्यार्थी 48
परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी
गुरुसत्ता का मिला हमें जो प्यार है (पूर्वार्द्ध) 51
साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला
परिवार की प्यार भरी संरचना 60
अपनों से अपनी बात
सच्ची लोकसेवा ही है आराधना 63
भाग्य जगा दो गुरुवर (कविता) 66
आवरण—3 67
आवरण—4 68

विशिष्ट सामयिक चिंतन

नशाबंदी औ

आंध्रप्रदेश के नेल्लोर जिले में शराब के खिलाफ चला 'एंटी एरेक' आंदोलन शायद कुछ लोगों को याद हो। इस आंदोलन ने प्रदेश में एक सरकार को जड़ से उखाड़ फेंका था। आंदोलन की पुरोधा रही रोसम्मा को गुजरे कई महीने हो चुके हैं। एक खेतिहर मजदूर रोसम्मा दुबेगुंटा ने शराब की वजह से अपना पति खो दिया और दो बच्चों की जिम्मेदारी उसके ऊपर आ गई।

रोसम्मा को महिलाओं के प्रति गाँव के शराबियों का व्यवहार हमेशा खटकता रहता था। गाँव में चले साक्षरता अभियान के दौरान शराब पीने से होने वाले नुकसान पर पढ़े पाठ ने रोसम्मा को प्रेरित किया और हिम्मत दी कि वह शराब के खिलाफ आवाज उठाए। उसने अपने जैसी पीड़ित महिलाओं को इकट्ठा किया और एक छोटे-से गाँव दुबेगुंटा से शराब के खिलाफ लामबंदी शुरू की। एक दिन इस आंदोलन ने इतना बड़ा रूप लिया, जिसने एक सरकार को सत्ता से बाहर कर दिया।

हिमाचल समेत देश के अन्य राज्यों में जगह-जगह हो रहे शराब के खिलाफ आंदोलन इस बात का एहसास दिला रहे हैं कि रोसम्मा मरी नहीं है। वह देश की हर उस स्त्री में मौजूद है, जो दिन-रात शराब के कारण प्रताड़ित होती है एवं जिसके साथ शराब के नशे में हिंसा, बलात्कार, छेड़-छाड़ की घटनाएँ हो रही हैं। जिसका परिवार शराब की वजह से बरबाद हो चुका है; जिसके सिर पर अपने बच्चों की जिम्मेदारी आन पड़ी है एवं जिसकी चिंता है कि वह अपने बच्चों को इस नरक में जाने

से कैसे बचाए? इसलिए शराब के ठेकों को खोलने के खिलाफ उनका गुस्सा जायज है।

उनका धरना-प्रदर्शन दरअसल उनके गुस्से, दरद और चिंता की मिली-जुली प्रतिक्रिया है, लेकिन अभी इन प्रदर्शनों की स्थिति वैसी ही है, जैसी उस फर्श की होती है, जिसे सुखाने के लिए हम बार-बार पोंछा तो लगा रहे हैं, लेकिन उसमें खुले हुए पानी के नल को बंद नहीं करते। शराब का बनना, बिकना और पीना बदस्तूर जारी है। जिन राज्यों ने शराब पर पाबंदी लगाई है, वहाँ भी शराब का सेवन रुका नहीं है।

शराब माफिया राजनीतिक आश्रय और आशीर्वाद से और कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार कुछ भ्रष्ट अधिकारियों की सहमति से धड़ल्ले से इस कारोबार को चला रहे हैं; जो नौजवानों को न केवल शराब, बल्कि दूसरे खतरनाक नशों में फाँसकर उन्हें इसका गुलाम बना रहे हैं और अपना काला धंधा भी चला रहे हैं। इसका जाल इतना गहरा और फैला हुआ है, जिसका अंदाजा आम आदमी को नहीं है।

शराब का ठेका तो सामने दिख़ जाता है, इसलिए उसके खिलाफ खड़ा होना आसान है, लेकिन चोरी-छिपे गैरकानूनी ढंग से नशे का व्यापार इससे कई गुना ज्यादा और बड़ा है। यह जाल छोटी और भामूली दिखने वाली दुकानों से लेकर स्कूलों, कॉलेजों के आस-पास, खेल के मैदानों के इर्द-गिर्द, मुहल्लों तक में फैला हुआ है।

नौज़वान इस साजिश का शिकार दो तरह से हो रहा है। उपभोक्ता के तौर पर भी और नशे के

वाहक के तौर पर भी। लालच में आकर नशा माफिया के चंगुल में फँसे नौजवान का इस गर्त से निकलना मुश्किल हो जाता है।

चुनावों के दिनों में नशा माफिया और राजनीतिज्ञों की यह जुगलबंदी खुलकर नजर आती है। वोट हासिल करने के लिए जिस तरह से शराब का इस्तेमाल किया जाता है, वह किसी से छिपा नहीं है। ऐसे काम वही लोग करते हैं, जो आगे चल कर जनता के प्रतिनिधि के तौर पर कुरसी पर बैठते हैं। उनसे अगर उम्मीद लगाई जाए कि वे शराब या अन्य किसी नशे को खतम करने में मदद करेंगे तो यह दिन में खुली आँखों से सपना देखने जैसी बात होगी।

उन्हें तो अगले चुनाव में भी नशा माफिया की मदद लेनी है और नशा माफिया को उनकी छत्रछाया में चुनाव पर लगाया गया पैसा वसूलने के साथ-साथ लाभ भी कमाना है। शायद इसीलिए हमारी नीतियों में दोहरापन नजर आता है। एक तरफ प्रशासन, जनसंपर्क विभाग और स्वास्थ्य विभाग नशामुक्ति अभियान चलाते हैं तो दूसरी ओर पंचायत के अंदर शराब की हर बोतल की बिक्री पर पंचायतें अपना हिस्सा तय करती हैं।

सरकारों को शराबबंदी से अपने राजस्व में कमी आने की चिंता सताती है। यही वह नल है, जिसमें रिसाव की वजह से बार-बार फर्श पर पोंछा करने से भी फर्श नहीं सूख रहा है। इसलिए

सिर्फ शराब के ठेके के बाहर मोर्चा लगाने से समस्या का पूरा समाधान नहीं होगा।

हालाँकि महिलाओं का प्रयास सराहनीय है, लेकिन मोर्चा चुनाव के दिनों में अपने गाँव में भी लगाना है, मोर्चा प्रशासन के सामने भी लगाना है, मोर्चा उसके खिलाफ भी लगाना है, जो प्रतिनिधि शराब बाँटकर वोट हासिल करने की कोशिश करता है।

नशामुक्त समाज बनाने और आने वाली पीढ़ी को नशे से बचाने के लिए चौतरफा घेरेबंदी की जरूरत है। शराब के खिलाफ आंदोलन करने वालों को यह जरूर जान लेना पड़ेगा कि छोटी आग को फूँक से भी बुझाया जा सकता है, पर हमारा सामना तो ऐसे तूफान से है, जिसके पास सामाजिक पहुँच की ताकत है, पैसे की ताकत है।

उसके नियंत्रण में वह तंत्र भी है, जिससे हम अपने बचाव और हमारे पक्ष में खड़े होने की उम्मीद रखते हैं। इस आग को ज्वाला बनाने की जरूरत है। मशालों को जोड़कर बड़ी आग बनाने की जरूरत है, जिसके खिलाफ अगर हवा चलती भी है तो वह बुझने के बजाय ज्यादा भड़के।

युग निर्माण आंदोलन में नशाबंदी का प्रावधान है। युग निर्माण के महायोद्धा इस कार्य को अन्जाम दे रहे हैं। इसे अब हमें मिलकर जन-आंदोलन का रूप देना होगा। नशा जीवन को खोखला कर देता है। जीवन को इससे बचाना चाहिए। ❑

धर्म का

एक पंथ का साधु या पुरोहित दूसरे संप्रदाय वालों को अमान्य होता है; क्योंकि उस धार्मिकता का आधार बाह्य परिचर्या के साथ जुड़ा होता है। उनके अनुरूप वस्त्रों का रंग, वेश, तिलक, छाप और अमुक पैगंबर अथवा पुस्तक की दुहाई देने वाले, मान्य परंपराओं का परिपोषण करने वाले लोग ही अंधश्रद्धालु जनता में मान्यता प्राप्त करते हैं।

यह धर्म की अंधपरंपरा है। दुर्भाग्य से आज इसी का प्रचलन है, फिर भी सार्वभौम-धर्मतत्त्व को सर्वथा विस्मृत नहीं कर दिया गया है। उसकी सर्वत्र अवज्ञा-अवहेलना नहीं हुई है। विचारशील लोग सोचते हैं कि जब धरती-आसमान एक हैं, एक ही सरदी-गरमी सबको प्रभावित करती है, हवा और पानी का एक ही तत्त्व सबका पोषण करता है और मनु की समस्त संतानें एक ही मनुष्य एवं मानव नाम से पुकारी जाती हैं तो फिर समस्त विश्व का एक ही धर्म क्यों नहीं हो सकता?

जब विज्ञान की मान्यताएँ सर्वत्र एक ही रूप में मानी जाती हैं तो ज्ञान को भी अविच्छिन्न क्यों नहीं रहना चाहिए? धर्मतत्त्व में देश और जाति के कारण अंतर क्यों आना चाहिए? जब प्रेम, सत्य, संयम, सौहार्द जैसे सद्गुण और क्रोध, छल, आलस्य आदि दुर्गुण सर्वत्र एक ही कसौटी पर कसकर भले और बुरे घोषित किए जाते हैं तो धर्म की अन्यान्य मान्यताएँ क्यों ऐसी नहीं होनी चाहिए, जिन्हें मानवीय विवेक बिना किसी हिचकिचाहट के अंगीकार कर सके?

धार्मिक मान्यता को विवेक की दृष्टि से अपनाना चाहिए। यह कैसी विडंबना है कि मोक्ष

का, मुक्त अंत:स्थिति का समर्थन करने वाले धर्म ही किस प्रकार एक संप्रदाय के लोगों को दूसरे संप्रदाय के लोगों के साथ एकता स्थापित करने में दीवारें खड़ी करते हैं और अपने और दूसरे पक्षधरों के बीच असमानता ही नहीं, अन्याय करने का भी प्रोत्साहन करते हैं।

छोटी-छोटी मान्यताओं, परंपराओं एवं क्रिया-कृत्यों के कारण मतभेदों को उभारकर वे भयंकर विग्रह उत्पन्न करते हैं और धर्मयुद्ध के, जिहाद के नाम पर कुकृत्यों का सृजन करते हैं। इसे देखकर 'अधर्म' भी सद्‌गुणों को बढ़ाने की अपनी मूल प्रकृति को छोड़कर मतांतरवाद के सहारे अमानवीय कृत्यों और दुष्कर्मों को बढ़ावा देने लगता है। संप्रदायमुक्त धर्म ही मान्य धर्म हो सकता है। संप्रदायों को धर्म मान बैठने से ही सारी गड़बड़ी उत्पन्न होती है। धर्म शब्द के साथ जो श्रद्धा और शाश्वत समर्थन जुड़ा हुआ है, उसका शोषण संप्रदायवादी करते हैं और जब मतांतरवादी दुराग्रहों पर अंकुश किया जाता है तो वे 'धर्म खतरे में है' के नारे लगाकर भावुक जनता की भावनाएँ भड़काते हैं।

भोजन-वस्त्र में रुचि की भिन्नता की तरह संप्रदायों को वैयक्तिक अभिरुचि का विषय माना जा सकता है, किंतु धर्म के सर्वोच्च सिंहासन पर उसे नहीं बिठाया जा सकता। एकांगी दृष्टिकोण, पक्षपात का दुराग्रह धर्म कैसे हो सकता है ? विवेक और औचित्य को यदि आधार माना जाए तो प्राय: सभी संप्रदाय वालों को अपने-अपने पंथों में से ढेरों कूड़ा-करकट बुहारना पड़ेगा। एक समय की

उपयोगिता दूसरे समय में अनुपयोगिता बनती रहती है। यह दृष्टि रखकर यदि सफाई पर निकला जाए तो हर संप्रदाय में ऐसा बहुत कुछ है, जिसकी अब कोई जरूरत नहीं रही।

इसी प्रकार यदि दोष-दर्शन हटाकर गुण-ग्राहक दृष्टि को विकसित किया जाए तो अन्य संप्रदायों में ऐसा बहुत कुछ मिलेगा, जिसे अपने धर्म में मिला लेने से उसकी प्रतिष्ठा में कमी नहीं होगी, वरन सर्वांगपूर्णता में ही अभिवृद्धि होगी। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की विडंबना बहुत भारी होती है। एकता को अनेकता में बिखेरकर हमने पाया कम है और खोया बहुत है।

प्राचीनकाल में एक ईश्वर था और एक धर्म। पृथक्तावादी निहित स्वार्थों ने अपना लाभ इसमें देखा कि उनका एक विशेष संप्रदाय बने, उसके अनुयायी अन्यान्यों से पृथक् होकर एक विशेष वर्ग बनाएँ और दूसरों से लड़ें। उनका व्यक्तिगत वर्चस्व इसी में बनता था। प्रतिभाशाली अग्रगामी जनसमाज को अपने पीछे घसीट ले चलने में ऐसे लोग सदा से ही बहुत कुछ सफल होते रहे हैं, अतः पृथक्तावाद पनपता गया।

अनेक संप्रदाय, अनेक देवता, अनेक ग्रंथ, अनेक विधि-निषेध गढ़े गए और विलगाव की जड़ें मजबूत होती चली गईं। इससे केवल पुरोहित वर्ग का स्वार्थ सधा। बाकी सब लोग भ्रांतियों के जंजाल में फँसकर अपना समय, धन और विवेक गँवाकर घाटे में ही रहते रहे।

युगधर्म है कि एकता के सूत्र पुनः प्रगाढ़ हों। विवेक की माँग है कि इस अनेकता को घटाया और मिटाया जाए। एक धर्म, एक ईश्वर, एक दर्शन, एक आचार, एक जाति की भावनात्मक एकता स्थापित की जाए और उसका व्यावहारिक

स्वरूप एक राष्ट्र में, एक भाषा में विकसित किया जाए।

पृथक्ता के लिए आग्रह बनाए रखकर हम हर दृष्टि से घाटे में रहेंगे। पूर्वकाल में राजा और धर्माचार्य की भूमिका एक ही व्यक्ति निबाहता था। धर्म-व्यवस्था और शासन का सूत्र-संचालन एक ही व्यक्ति करे, इसमें उन दिनों सुविधा समझी गई। मुसलिम इतिहासकारों ने बादशाहों को 'जिले अल्लाह' (ईश्वर का प्रतीक) लिखा है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श सामने रख कर विश्व की पुनः संरचना की जाए। परायापन ही दृष्टिगोचर न हो। सारा विश्व अपना घर-परिवार प्रतीत हो और भाषा, देश, धर्म, संस्कृति जैसे आधारों को पृथक्तावादी प्रवृत्ति पनपाने से विरत कर दिया जाए।

—परमपूज्य गुरुदेव

डेनमार्क की माताएँ अपने नवजात बच्चों का स्पर्श वहाँ के राजा से कराने के लिए ले जाती थीं और किसान अपना अनाज तब ही खाते थे, जब राजा उसे छूकर 'निर्दोष' बना देता था, उनका विश्वास था कि इस प्रकार के स्पर्श से कल्याण होता है।

ब्रिटेन में यह मान्यता बहुत समय तक बनी रही कि रोग-मुक्ति के लिए राजा का स्पर्श चमत्कारी

उपचार है। धर्माचार्य और शासनकर्त्ता—दोनों की ही भूमिकाएँ उन्होंने निभाई हैं। धर्म और शासन को पृथक् इसलिए होना पड़ा कि उसमें पृथक्तावादी-दुराग्रहों ने जड़ जमा ली।

यदि धर्म केवल भावनात्मक एकता, चरित्र-निष्ठा और लोक-कल्याण की सत्प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करे, व्यक्ति और समाज की उत्कृष्टता बढ़ाने में सहायता करे तो कोई कारण नहीं कि उसे सर्वमान्य सम्मान पुनः प्रदान न किया जा सके। प्राचीनकाल में धर्म और शासन एक था। बाद में दोनों एकदूसरे के पूरक होकर रहते रहे। यही स्थिति पुनः स्थापित करनी पड़ेगी।

धर्म के हाथ में शासन रहना चाहिए और शासन को धर्म की प्रतिष्ठापना एवं सुरक्षा का

उत्तरदायित्व निबाहना चाहिए। धर्म में मानवीय-चेतना को आस्थाओं के साथ बाँधने की क्षमता है। व्यक्ति को सुव्यवस्थित और समाज को समुन्नत बनाने की दृष्टि से यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उसे यदि अपने यथार्थ स्वरूप में रहने दिया जाए और चिंतन तथा कर्तृत्व को परिष्कृत बनाने के लिए दूरदर्शिता के साथ प्रयुक्त किया जाए तो निस्संदेह सर्वतोमुखी प्रगति और सुख-शांति के अभिवर्द्धन में धर्म की महती भूमिका हो सकती है।

आज की विकृत दुर्दशा के कीचड़ से धर्म को निकालकर उसे आदर्शवादी उत्कृष्टता के साथ जोड़ना मानवीय हित-साधना की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक कार्य माना जाना चाहिए। यही धर्म का मर्म है। ❑

आदर्श व्यक्तित्व के तीन

चिंतन, चरित्र और व्यवहार के स्तर पर श्रेष्ठता-उच्चता को धारण करना एक सच्चे लोकसेवी का नैष्ठिक दायित्व है। हमारे आदर्श व्यक्तित्व की संरचना के ये तीनों मूल स्तंभ हैं। तीनों में से किसी एक के भी कमजोर रहने से लोकसेवा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

हमारी गुरुसत्ता ने भी चिंतन, चरित्र और व्यवहार में आदर्शवादिता को ही लोकसेवी की पहचान कहा है। जन्मशताब्दी वर्ष की इस प्रवाहशील वेला में प्रत्येक आत्मीय परिजन और निष्ठावान कार्यकर्त्ता, साधक के लिए जिस ऊर्जा, शक्ति-सामर्थ्य व समर्पण की आवश्यकता है, उसे प्राप्त करने का मार्ग केवल और केवल हमारी गुरुसत्ता के निर्देशों-अनुबंधों को आत्मसात् करना ही है, और ज्यादा कुछ नहीं।

इसी संदर्भ में विगत अंकों में उपासना, साधना और आराधना संबंधी विचारों को साझा किया गया है। ये तीनों गायत्री परिवार के प्रत्येक परिजन की मूलभूत कसौटी हैं। ये हमारे महान लक्ष्य की उपलब्धि को सुनिश्चित बनाने वाली जीवन-साधना का अनिवार्य चरण हैं। चिंतन, चरित्र और व्यवहार की उत्कृष्टता इसी जीवन-साधना का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उपासना से चिंतन-चेतना की आधारभूमि का परिष्कार, साधना से सच्चरित्र को विनिर्मित करने वाली दिव्य क्षमताएँ तथा आराधना से लोक-मंगल के क्षेत्र में प्रेम, संवेदना और आत्मीयता के अटूट बंधन में बाँध लेने वाला मधुर व्यवहार—यही तीनों लोकसेवी के व्यक्तित्व के परम मूल्य व जीवन के पर्याय हैं।

हमारे चिंतन का स्रोत माता गायत्री और पूज्य गुरुदेव हैं। दोनों एकाकार रूप में सद्ज्ञान, सद्बुद्धि, सद्विचार के अनंत-अथाह सागर हैं। उपासना का ध्येय इसी सद्ज्ञान-सद्विचार के समुद्र में कलुषित-कमजोर मन को डुबोना और उसकी चिंतन-चेतना को परिष्कृत बनाना है। उपासना की नियमितता में गायत्री जप और गुरुदेव के सत्साहित्य में समाहित विचारों का स्वाध्याय प्रत्येक लोकसेवी का विहित धर्म है।

इस धर्म के दैनिक परिपालन से उत्पन्न चिंतन-विचार ही सार-सार्थक हैं, अन्य सभी पढ़ा-सुना कहा गया विचार-चिंतन केवल ज्ञान-जानकारीवर्द्धन की दृष्टि से ही औचित्यपूर्ण है, चिंतन-चेतना के परिष्कार की दृष्टि से उसका कोई अर्थ नहीं। कई बार तो बाहरी पढ़ा-सुना हुआ चिंतन-विचार हमारी मनोभूमि में भ्रम, भ्रांति-भटकाव के बीज डाल देता है और हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ की स्थिति में आ जाते हैं।

ऐसे में दिशा से, लक्ष्य से भटकने की पूर्ण गुंजाइश हो जाती है। अत: सावधान हो देखें कि हमारी वस्तुस्थिति क्या है? मंत्रजप का, स्वाध्याय का, पूज्यवर के सद्ज्ञानरूपी विचारों का सान्निध्य दैनंदिन जीवनचर्या में है या नहीं? कहीं कोई व्यतिरेक, लापरवाही, शिथिलता तो नहीं आ गई है। मूल्यांकन और त्रुटि सुधार का सर्वोत्तम काल यही है। महाकाल के सृष्टिमंथन की प्रक्रिया में यह कालखंड आत्ममंथन का सुअवसर लेकर आया है।

यह जन्मशताब्दी से लेकर चलने वाले आगामी चौबीस वर्षों की युग प्रत्यावर्तन प्रक्रिया की पूर्व संध्या का काल है। हमारी इस पुनीत परंपरा से तो

सभी परिचित हैं कि प्रत्येक विशिष्ट पर्व, आयोजन के शुभारंभ से पूर्व की संध्यावेला प्रेरणा-संकल्प को धारण करने की होती है। वसंत पर्व हो, गायत्री जयंती या गुरुपूर्णिमा—ऐसे सभी विशेष अवसरों की पूर्व संध्या भी विशिष्ट ही होती है।

वर्तमान समय को भी आगामी चौबीसवर्षीय महाआयोजन की पूर्व संध्या के रूप में ही आत्मसात् करना चाहिए। अपनी प्रेरणा और संकल्प को प्रकाशित करने वाली शक्ति-सामर्थ्य अपने भीतर ही गुरुसत्ता के रूप में विद्यमान है। इस युग में आद्यशक्ति गायत्री की प्रतिष्ठा उन्हीं में समाहित है। उपासना के उपास्य और चिंतन-चेतना के स्रोत वे ही हैं। बाहर कहीं कुछ नहीं, हमारा सब कुछ गुरुदेव में विद्यमान है।

हमारे चिंतन की डोर सदैव उनसे जुड़ी रहे और उनके ही विचार हममें प्रकाशित हों, इसके लिए ही उपासना अनुबंध प्रत्येक परिजन के साथ जुड़ा है। उपासना क्रम में मंत्रजप और स्वाध्याय—ये दो ऐसे उपाय हैं, जो चिंतन की दिशा को सदैव ऊर्ध्वगामी व इष्ट सत्ता की ओर उन्मुख बनाए रहते हैं। हमारे आत्मबल, संकल्पबल और इच्छाशक्ति का पोषण यहीं से होता है।

अध्यात्म विज्ञान के मर्मज्ञ इस तथ्य को बखूबी जानते हैं कि मंत्रजप से मन की धारणाशक्ति सुदृढ़ हो उठती है और उसमें उच्चस्तरीय क्षमताओं का विकास संभव हो पाता है। इसी तरह स्वाध्याय से चिंतन-चेतना में पवित्रता, दिव्यता, सूक्ष्मता, व्यापकता जैसी विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं। सार रूप में कहें तो यह सूक्ष्मशरीर के धरातल को प्रकाशित, पोषित और व्यापक बनाने वाली प्रक्रिया है, जिसके फलस्वरूप कारण जगत् की शक्ति-संवेदना का जीवन में अवतरण संभव होता है।

जीवन के आध्यात्मिक रूपांतरण का शुभारंभ यहीं से होता है। यदि एक बार भी कारणसत्ता का

सूक्ष्मशरीर में पदार्पण हो जाए तो जन्म-जन्मांतरों के दोष-दुर्गुण, भय-भ्रांति, अज्ञान-अँधेरा—सारी बाधाएँ पल भर में हट जाती हैं और चिंतन-चेतना में सर्वत्र इष्ट-आराध्य का स्वरूप प्रकाशित हो उठता है।

हमारे जीवन में गुरुजी, माताजी, गायत्री माता की शक्तियों का प्रकटीकरण इसी उपासना क्रम से संभव है। हमारे गुरुदेव को भी अपने गुरु का सान्निध्य उपासनाकाल में ही प्राप्त हुआ था। यही सर्वोत्तम सुलभ मार्ग हम सभी के लिए उन्होंने निर्दिष्ट किया है। जो उनके सहचर-सहभागी रहे उन्होंने भी आजीवन इसी मार्ग का अनुसरण कर स्वयं को धन्य बनाया और बना रहे हैं। यहाँ तो उनके लिए बात की जा रही है, जो नए हैं अथवा किन्हीं कारणों से अपने उपासना क्रम में व्यतिक्रम करके बैठे हैं।

कई बार लोग गलत धारणा और अपरिपक्व मानसिकता के चलते यह मान बैठते हैं कि हमें सिर्फ काम करते जाना है, बाकी सब गुरुजी सँभाल लेंगे। दलीलें यह सुनी जा सकती हैं कि स्वयं गुरुजी ने कहा—''तुम मेरा काम करो, मैं तुम्हारा काम करूँगा।'' एकदम सही बात है, लेकिन ध्यान यह भी रखना चाहिए कि 'अपना सुधार-संसार की सबसे बड़ी सेवा' और 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' के सूत्र भी गुरुजी के ही हैं।

शरीर जब काम करता है तो उसके प्राण-प्रवाह और ऊर्जा को जीवंत बनाए रखने के लिए हम प्रतिदिन आवश्यक पोषक तत्त्वों की व्यवस्था करते हैं। नाश्ता-भोजन आदि में आरोग्यता और पौष्टिकता का बखूबी ध्यान रखते हैं। इसमें कोताही-लापरवाही बरतने पर इसकी कीमत भी चुकाते हैं।

इसी तरह उपासना में दैनिक मंत्रजप-स्वाध्याय भी हमारे व्यक्तित्व के आंतरिक पहलुओं को पोषण और आरोग्य प्रदान करने वाला आध्यात्मिक आहार

है। शरीर के भोजन की भाँति इसे भी नियमितता के साथ हमें करना ही है। शरीर में जिस व्यक्तित्व को हम धारण किए हुए हैं, उसकी गुरुकार्य हेतु पात्रता, समर्थता और गुणवत्ता को बनाए रखना स्वयं की ही जिम्मेदारी है। अतः भूलकर भी अपनी उपासना से विमुख कर देने वाली बातों को प्रश्रय न दें।

किन्हीं अपनों में भी यदि ऐसी वस्तुस्थिति का पता चले तो उन्हें भी भाई-बंधु के हक से आग्रह अवश्य करें। इस तथ्य को हजार बार स्मरण करें कि पूज्यवर का सबसे पहला काम व्यक्ति निर्माण है। व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रामाणिकता और उच्चता पर ही अन्य सभी क्रियाकलापों और हमारे महान लक्ष्य की सार्थकता निर्भर है। ऐसे प्रखर व्यक्तित्व को प्राप्त करने-गढ़ने के लिए ही प्रत्येक के लिए उपासना की अनिवार्यता है।

उपासना में मंत्रजप से आत्मबल, मनोबल प्राप्त होता है और नियमित उपासक इस सत्य का अनुभव कर लेते हैं कि आत्मबल का संदोहन केवल ब्रह्मबल से ही संभव है। ब्रह्म का बल, तेज और शक्ति स्वयं गायत्री ही है। गायत्री महाविज्ञान ग्रंथ में प्रस्तुत इस तथ्य की महत्ता से प्रायः हम सभी परिचित हैं ही।

आत्मबल से संकल्प सिद्धि और मनोबल से दृढ़ इच्छाशक्ति—ये दोनों ही उच्चस्तरीय व्यक्तित्व की कसौटी हैं। ऐसे दिव्य गुणों के धरातल पर ही सद्ज्ञान, सच्चिंतन, सद्विचारों की फसल लहराती है अन्यथा अच्छे विचार, अच्छा चिंतन जीवन में आते-जाते रहते हैं, परंतु वे जीवन का हिस्सा, व्यक्तित्व की पहचान नहीं बन पाते हैं। व्यक्ति विचार-भावों के स्तर पर कुछ और तथा यथार्थ के धरातल पर कुछ और ही दिखाई देता है।

व्यक्तित्व का यह दोहरापन जनसमाज में सहज ही पहचान लिया जाता है। ऐसे व्यक्तित्व से लोक-मंगल की आशा करना भी व्यर्थ है। हमें इस ओर

सचेत और प्रामाणिक बने रहना है। इसके लिए आवश्यक है पूज्य गुरुदेव के विचारों का न्यूनाधिक मात्रा में नियमित स्वाध्याय करना।

पूज्य गुरुदेव के विचार अतुलनीय, असाधारण मंत्र की भाँति हैं। उनमें चिंतन-चेतना को परिष्कृत-संवर्द्धित-प्रकाशित करने की अपरिमित सामर्थ्य है। उनका अंकुरण-प्रस्फुटन आत्मा के धरातल से हुआ है। ये पुरातन ऋषियों के मंत्रों की भाँति युगऋषि के 'आप्त वचन' हैं। इनका अपने उपासना क्रम में नियमित सान्निध्य एक उच्चस्तरीय साधना के प्रतिफल समान ही लाभ देने वाला है।

संचार क्रांति के इस युग में सत्साहित्य के साथ-साथ अनेक तकनीकी माध्यमों से भी पूज्यवर के विचार सुलभ हैं, लेकिन फिर भी यदि स्वाध्याय क्रम के चयन के लिए असुविधा लगे तो किसी गायत्री परिवार के युगसाधक से परामर्श कर अपने अनुकूल साहित्य का चयन किया जा सकता है। जैसी भी व्यवस्था एवं सुविधा बन पड़े, लेकिन स्वाध्याय का क्रम नियमित-निरंतर अवश्य किया जाना चाहिए। हमारी चिंतन-चेतना को उपासना का संबल मिले, यही उचित है और यह समय भी उसके लिए सर्वथा उपयुक्त है।

पूज्य गुरुदेव ने समग्र व्यक्तित्व को तीन भागों में बाँटा है—चिंतन, चरित्र और व्यवहार। दैनिक उपासना से पहला चरण पूर्ण होने पर ही दूसरे का क्रम आता है। अतः प्रथम चरण की अनिवार्यता और महत्ता को आत्मसात् करते हुए स्वयं की वस्तुस्थिति को परखने और किसी त्रुटि-कमी का आभास होने पर इसे त्वरित ठीक करने का उपाय कर लेना भी जन्मशताब्दी वर्ष के स्वागत का महत्त्वपूर्ण आयाम साबित होगा।

हमारी उपासना की अखंडता से अखण्ड ज्योति का दिव्य प्रकाश प्रस्फुटित हो, माँ भगवती से यही प्रार्थना है। ❑

गीता का संदेश

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

—गीता (2/64)

हो राग-द्वेष से हीन मनुज,
इंद्रिय-समूह वश है करता।
भोगता हुआ वह विषयों को,
मन में प्रसन्नता है भरता॥

बुद्धि की उच्चतम श्रेणी का वर्णन गीता करती है। उसके लिए बुद्धि की वह उपाधि मूल्य की नहीं, जिसमें वह बहिर्जगत् के विषयों के प्रति सक्रिय रह कर अपने अनेक ताम-झाम बुनती रहती है या विषयों के चिंतन के फलस्वरूप अपना ध्येय विशेष बहिर्जगत् में ही लक्षित किए रहती है। बुद्धि का यहाँ अर्थ निर्मल मन की कार्यशैली से है और उसे ही प्रज्ञा कहते हैं। जिसकी बुद्धि स्थिर हो चुकी हो, राग-द्वेष के कुप्रभाव जिनकी चेतना पर आकंठित न होते हों, जो इंद्रिय समूह को वश में किए, विषयों को आसक्तिरहित होकर ग्रहण करते हैं, वही व्यक्ति योगी कहलाने के योग्य हैं, ऐसा गीता का मत है।

अब बात आती है कि इस ज्ञान का वर्तमान समय में क्या महत्त्व है? क्या बुद्धि की निर्मलता आज जितनी आवश्यक हो गई है, उतनी पहले कभी थी; क्योंकि सामान्य जन पर इंटरनेट, मीडिया, पत्राचार से पड़ने वाले कुप्रभाव इतने बढ़ गए हैं कि अब वह किसी प्रकार जीवन निर्वाह के कार्यक्रम में लगे रहकर अपने समय की, अपने श्रम, अपनी प्रतिभा की उपयोगिता उन कार्यों में नहीं समझता जो कि जीवन को सच में महान एवं अनुकरणीय बनाते हैं।

चेतना का स्तर बढ़ाए बिना आप किसी राष्ट्र की प्रगति की कल्पना नहीं कर सकते हैं। हाँ, यदि राष्ट्र भौतिकवादी प्रयोजनों को ही महत्त्व दे, अपनी जनता के आत्मविकास को तिलांजलि दे दे, तो ऐसे उदाहरण तो समस्त विश्व में भरे पड़े हैं।

जहाँ-जहाँ आर्थिक उन्नति हुई, वहाँ पर मनुष्य का निज विकास संभव नहीं हो पाया, अन्याय-शोषण-अत्याचार का किसी प्रकार बोलबाला बना ही रहा है, एवं प्रगति के नाम पर आडंबरयुक्त जीवनशैली का ही प्रचलन बढ़ा है तथा मनुष्य के विकास में महत्त्वपूर्ण जीवनमूल्यों की इतिश्री कर दी गई है। इतने में भी भारत, जो कि आध्यात्मिक ज्ञान का, उच्च चेतनायुक्त दृष्टिकोण का, महान व्यक्तित्वों की केंद्रीय स्थली रहा है, उसने भी वह प्रगति प्राप्त नहीं की जिसे अनुकरणीय कहा जा सकता।

दुनिया के विकास का आधार जिस आत्मिकी को होना चाहिए, वह अभी तक विश्व-पटल पर आच्छादित होने में, अपनी गुण-गरिमा से मानवता को निहाल करने में असफल रही है। जिस उच्चतम दृष्टिकोण का विकास मानव जाति के सभी वर्गों में होना चाहिए था, वह संस्कृतियों की मतभिन्नता एवं राष्ट्रों की अपनी-अपनी परिकल्पना के तले सिमट-सा गया एवं अब हमें विकास की परिभाषाएँ तो पता हैं, पर वास्तविक विकास होता दिखाई नहीं पड़ता।

इसी परिप्रेक्ष्य में गीता का संदेश मुखरित हो पड़ता है, जिसमें कि मानव मन की उच्चतम संभावना का दिग्दर्शन कर, हमें एक श्रेष्ठ मानवता के निर्माण का सूत्र दिखाई पड़ता है।

राग-द्वेष से मुक्त वही हो सकता है, जो कि बाहरी संसार एवं विषय-भूमि से भली भाँति परिचित हो एवं जिसका एकमात्र आधार वह दैवी तत्व हो, जो कि संसारगत सभी हलचलों में आत्मप्रेरणा के ही दिग्दर्शन कर सके।

जिस अभिप्राय से गीता कही गई थी, वह एक घटना विशेष के परिणामस्वरूप नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन एवं संपूर्ण मानव इतिहास के लिए प्रयोजनीय है। गीता का संदेश अमर है, चिरकाल तक स्मरणीय है, उसके पात्र समयगत धारा में परिवर्तित हो जाने वाले नहीं हैं एवं उसका दर्शन समष्टिहित में प्रयोग करने योग्य है।

गीता का माहात्म्य अर्जुन के लिए ही नहीं, प्रत्येक उस व्यक्ति के लिए है, जो कि अपनी चेतना को सशक्त बना, जीवन के कल्याण का पथ प्रशस्त करना चाहता है। इसलिए उपर्युक्त श्लोक में राग-द्वेष से रहित हुई बुद्धि एवं इंद्रियों को निगृहीत कर विषयों को स्वेच्छा से ग्रहण करने की विधा बताई गई है। यह आम सांसारिक जीवन के लिए अनिवार्य नहीं, परंतु जिन्होंने एक दिव्य जीवन जीने का निश्चय किया है, उन्हें निश्चित ही गीता के इस संदेश का अनुसरण करना चाहिए एवं अपने जीवन को दैवी मनोभावों के अनुकूल श्रेष्ठ-समुन्नत बनाने की दिशा में कदम बढ़ाने चाहिए। ❑

अनुत्तर योगी बनने व

भारत की पुण्यधरा पर असंख्य महापुरुषों ने जन्म लेकर न सिर्फ इस धरा को, बल्कि संपूर्ण वसुधा को धन्य-धन्य किया है। उन्हीं महापुरुषों में जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान महावीर का नाम भी आता है। उनका जीवन उच्च आदर्शों, प्रेरणाओं से पूर्णतया भरा हुआ है और सबके लिए आदर्श और अनुकरणीय भी है।

संसार भी उन्हीं को याद करता है, जो संसार के हित के लिए कुछ कर जाते हैं और फिर महावीर का जीवन तो पूर्णतया संसार के कल्याण के लिए ही समर्पित रहा। यदि वे चाहते तो किसी गुफा या कंदरा में साधना करके स्वयं को आत्मलाभ, ऋद्धि-सिद्धियाँ अथवा निर्वाणप्राप्ति मात्र तक सीमित रखते, पर उनकी साधना का उद्देश्य मात्र स्वयं लाभ प्राप्त कर लेना कतई न था। इसलिए वे आजीवन हजार कष्ट सहकर भी संसार के कल्याण के लिए कार्य करते रहे।

वे आत्म-प्रतिष्ठा, निर्वाण प्राप्त कर लेने के बावजूद भी मानवता के कल्याण में आजीवन लगे रहे। उनके जीवन पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जनकल्याण की भावना से जन्मी हुई महावीर की सेवा-भावना दिनोंदिन बढ़ती गई और वे अपनी संकुचित सीमा से निकलकर संसार की विस्तृत परिधि में प्रवेश करते गए। ज्यों-ज्यों उनका यह विकास बढ़ता गया, वे व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं से विरक्त ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र के लिए व्याकुल होते गए और आखिर शीघ्र ही वह घड़ी आ गई, जब उनकी करुणासिक्त आत्मा ने लोक-मंगल के लिए संन्यास लेने की ठान ली।

महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ को मंत्रियों ने न केवल सूचना दी, बल्कि यह परामर्श भी दिया कि महाराज! आप कुमार वर्धमान को साधु-संन्यासी होने से रोकें। माता-पिता ने राजकुमार को डाँट-फटकार से बदलता न देखा तो उन्होंने उनकी विरक्त भावना के विरुद्ध उन्हें विवाह के बंधन में बाँध दिया।

अपनी इच्छा के विरुद्ध हुए विवाह को महावीर यदि एक बोझ की तरह ढोते तो यह उस पत्नी के प्रति घोर अत्याचार होता, अस्तु अपनी इच्छा के विरुद्ध विवाह होने पर भी महावीर अपने गृहस्थ धर्म की जिम्मेदारियों का पालन करने लगे, पर फिर भी संसार की सेवा और विरक्ति की भावना उनमें कम न हुई। राजकुमार वर्धमान ने अपने दांपत्य जीवन को एक आदर्श जीवन की तरह चलाया।

राजकुमार होने के बावजूद भी वे एक साधारण व्यक्ति की तरह गृहस्थी के छोटे-बड़े कार्यों में रुचि लेते और सेवकों के होते हुए भी सारे काम स्वयं ही करते। राजकुमार वर्धमान ने अपनी पत्नी को आत्मा की गहराई से इस सीमा तक प्यार किया कि उसका मानवीय अनुराग श्रद्धा में बदल गया और उसका सारा मोह, वर्धमान की महानता में विलीन हो गया।

उनकी पत्नी राजकुमारी यशोदा ने यह स्पष्ट अनुभव कर लिया कि उसका पति परमात्मा का पूर्ण प्रतिबिंब है। वे केवल उसकी ही संपत्ति नहीं, बल्कि सारे संसार की विभूति हैं, जिसका लाभ दुनिया की दु:खी मानवता को मिलना ही चाहिए।

कुछ समय पश्चात एक पुत्री रत्न के रूप में पति का प्रसाद पाकर यशोदा संतुष्ट हो गई और उसने पति की इच्छानुसार उन्हें संसार को सौंप देने की तैयारी कर ली। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो संसार में रहकर भी संसार की आसक्ति से मुक्त हैं उनके लिए विवाह भी कोई बंधन नहीं। जो अंतरात्मा से मोह और आसक्ति से विरक्त हो चुका हो, उसे भला संसार का कौन-सा प्रलोभन ध्येयमार्ग से विचलित कर सकता है।

वर्धमान ने गृहस्थी को अनासक्त भाव से भोगा। वर्धमान ने अपने सरल स्वभाव तथा सादा जीवन से जनसाधारण के सम्मुख सामान्य जीवन का एक आदर्श उपस्थित कर दिया। अपने बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवहार से वर्धमान ने पत्नी को भी परोपकार के लिए हर त्याग करने के लिए तैयार कर लिया था।

अपने माता-पिता का वे बहुत सम्मान करते थे, पर हाँ! पुत्र मोह के कारण माता-पिता नहीं चाहते थे कि उनका पुत्र साधु-संन्यासी बन जाए। समय आया और जो माता-पिता अपने को छोड़ कर वर्धमान को परमार्थ पथ पर नहीं जाने देना चाहते थे, वे ही एक दिन स्वयं उसे छोड़कर चले गए।

माता-पिता की आकस्मिक मृत्यु ने उनमें यह विचार प्रबल कर दिया कि किसी भी शुभ कार्य में देर न करनी चाहिए; क्योंकि इस क्षणभंगुर शरीर का कोई भरोसा नहीं कि यह कब धोखा दे जाए? वर्धमान को घर से जाते देखकर उनके बड़े भाई नंदिवर्धन ने उन्हें रोककर कहा—"वर्धमान अभी तो माता-पिता के बिछड़ने का दुःख दूर भी नहीं हुआ कि अब तुम भी मुझे छोड़ कर जा रहे हो। क्या मेरा दुर्भाग्य इतना क्रूर और कठोर है? मेरे भाई! परिवार को अपने विछोह का आघात सहन कर लेने के योग्य हो लेने दो, तब जाना

और इसके लिए मैं तुमसे दो साल की अवधि माँगता हूँ।''

अपने अग्रज के मुख से ऐसी बातें सुनकर वर्धमान के बढ़ते हुए कदम रुक गए। माता-पिता की भाँति ही अपने आदरणीय भाई का हृदय तोड़ना भी उन्होंने उचित न समझा।

वर्धमान ने इन दो वर्षों की अवधि को भी अपने आगामी जीवन के अभ्यास में ही लगाया। वे घर पर रुक तो अवश्य गए, किंतु पूर्ण साधु की भाँति ही। इधर नंदिवर्धन ने वर्धमान को उनके हिस्से की जो लाखों रुपयों की संपत्ति दी थी, वह भी वर्धमान ने स्नेहियों, सेवकों तथा दीन-दु:खियों को बाँट दी।

निऋतिर्दुर्हुणा वधीत् पदीष्ट तृणया सह।

अर्थात तृष्णा नष्ट होने पर विपत्तियाँ भी स्वत: नष्ट हो जाती हैं।

नंदिवर्धन की जरा भी इच्छा नहीं थी कि वह संन्यास लेते हुए अपने छोटे भाई के हिस्से की संपत्ति स्वयं दबा लें। वास्तव में कितने अभागे होते होंगे, जो अवसर का लाभ उठाकर अपने भाइयों का अधिकार छीन लेते होंगे, हड़प लेते होंगे।

यदि नंदिवर्धन वर्धमान को उनका भाग न भी देते तो भी उन्हें कोई शिकायत न होती। जो सारा घर-बार छोड़कर संन्यास ले रहा हो, उसको संपत्ति से क्या काम ? पर फिर भी नंदिवर्धन ने आग्रहपूर्वक उनका भाग उन्हें दे ही दिया और वर्धमान के हाथों उस संपत्ति का वितरण औरों के बीच होता देखकर उन्हें हर्ष एवं संतोष ही हुआ। जब दो वर्ष बीत गए

तब वर्धमान ने 'महावीर' होकर अपना रास्ता लिया। उन्होंने अपने केश अपने हाथ से उखाड़ फेंके। एक कौपीन के अतिरिक्त सारे वस्त्र त्याग दिए।

कुछ समय घूमने के बाद वर्धमान ने निश्चय किया कि अब वे किसी उपयुक्त स्थान पर जाकर समाधि का अभ्यास करेंगे, मौन धारण करेंगे और भिक्षा का अन्न हाथ पर रखकर ही खाएँगे। वे इसी उद्देश्य से भ्रमण करते हुए आस्थिक नामक ग्राम में पहुँचे, किंतु वहाँ पर उन्होंने देखा कि वहाँ जनता भूत-प्रेतों, अंधविश्वासों और मूढ़मान्यताओं में फँसी हुई है और इसी आधार पर धूर्त लोग उसे मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।

वहाँ की जनता की मनोदशा और दुर्दशा को देखकर उनकी आत्मा तड़प उठी और वे समाधि लगाने और मौन धारण करने के बजाय जनता का अंधविश्वास दूर करने में लग गए। इस काम के लिए वे वहाँ चार माह तक ठहरे और वहाँ से तभी चले जब जनता अंधविश्वासों से पूरी तरह मुक्त हो गई।

आस्थिक से चलकर महावीर मौराक पहुँचे तो उन्हें पता चला कि वहाँ की जनता अनाचार के चक्र में पूरी तरह फँसी हुई है। महावीर की समाधि साधना का कार्यक्रम पुनः रुक गया। तंत्र-मंत्र के नाम पर चल रहे पाखंड को दूर करने के लिए वहाँ भी उन्हें चार माह तक रुकना पड़ा।

तत्पश्चात वे स्वेतांबी और सुरभिंपुर होते हुए नालंदा पहुँचे, जहाँ उनका परिचय उस समय के प्रख्यात विद्वान और धर्मप्रर्वतकों में से एक गोसाल से हुआ। गोसाल महावीर की त्याग, तपस्या और लोक-कल्याण की भावना से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने महावीर को अपना गुरु मान लिया। लोगों पर महावीर के व्यक्तित्व का प्रभाव सिर चढ़कर बोलने लगा था।

लोगों पर महावीर का यह प्रभाव उनकी विद्या-विभूति या साधना-समाधि के कारण नहीं, बल्कि यह प्रभाव उनकी उस उज्ज्वल आत्मा का था, जो हर समय लोक-कल्याण, विश्वकल्याण और परोपकार, परमार्थ की भावना से विह्वल रहती थी।

यह सत्य भी है कि मनुष्य कोई साधना करे या न करे, कोई तप करे या न करे, पर यदि उसकी आत्मा लोक-कल्याण की भावना से सदैव विह्वल रहती है तब भी उस अकेली परिव्याप्त लोक-कल्याण की भावना से उसकी वाणी तथा व्यक्तित्व में इतना तेज आ जाता है कि उसके संपर्क में आया हुआ कोई भी बड़े-से-बड़ा व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अपने संन्यस्त जीवन में बारह वर्ष तक देश-देश घूमते हुए, साधना-समाधि, तप-व्रत करते हुए और कष्ट सहते-सहते वे पूर्ण परमहंस योगी हो गए।

वे बिना वस्त्र के रहते, बच्चे उन पर ईंट चलाते, मूढ़ लोग उन्हें पागल-पागल कहते हुए शोर मचाते, ताली बजाते, किंतु वीतराग वर्धमान मौन मानस में डुबकी लगा के सत्य की खोज में लगे रहते। अब तो उन्होंने अन्न, साग-सब्जी तक का भी त्याग कर दिया था। यदि कभी पानी पीते भी थे तो गरम पानी ही पीते थे। उन्होंने शरीर की सारी यातनाएँ मिटा डालने के लिए सुख की नींद सोना, जाड़ा-गरमी और बरसात से बचना भी छोड़ दिया। वे जाड़ों में खुले मैदानों और गरमियों में लोहारों आदि की दुकानों पर पड़े रहते थे।

बारह वर्ष तक निंदा का त्याग करके वे पूर्ण जिन हो गए और संसार के सारे सुख-दुःखों से परे हो गए। इस प्रकार स्वयं को बारह साल तक तपाने के बाद उन्हें वैशाख सुदी दशमी को ऋजु बालिका

नदी के तट पर जमिया नामक ग्राम में 'केवल दर्शन' अर्थात बोध प्राप्त हुआ।

बोध प्राप्त होते ही, प्रकाश प्राप्त होते ही उन्होंने मौन व्रत को उपदेशों में बदल दिया। उन्होंने अपने उपदेशों से पाखंडियों, वंचकों को परास्त कर जनता को धार्मिक अत्याचारों से मुक्ति दिलाई और उन्हें धर्म का सच्चा स्वरूप बताकर उनके लिए शाश्वत सुख और आनंद का द्वार खोल दिया। उनसे दीक्षा लेने के लिए उनके शिष्य व धर्म प्रचारक बनने के लिए लोग उमड़ने लगे। उनके शिष्यों में केवल जनसाधारण ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े राजा, राजकुमार तथा राजकुमारियाँ भी थे।

ज्ञान तथा सत्य-पथ की प्यासी जनता की भीड़ उनके पास जाकर व उपदेश सुनकर तथा दीक्षा ग्रहण करने लगी, जिससे संपूर्ण देश में उनका

यश फैल गया। अंग, काशी, श्रावस्ती तथा राजगृह आदि में राजाओं को दीक्षा देते और उपदेश करते हुए वे अपनी जन्मभूमि 'वैशाली' गए, जहाँ उन्होंने अपनी पत्नी, पुत्री तथा दामाद 'जामालि' को भी धर्म-दीक्षा दी। इस प्रकार वे देश का धार्मिक कायाकल्प करके पावापुरी आए, वहाँ निरंतर उपदेश देते और उपवास करते हुए दीपावली की रात को उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

भगवान महावीर ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि का उपदेश देकर कोटिशः लोगों के जीवन को रूपांतरित कर दिया। सचमुच उच्च आदर्शों के प्रतिमान थे भगवान महावीर। वस्तुतः अनुत्तर योगी महावीर जिस मार्ग पर चले, वही है वर्धमान से महावीर बनने या होने का मार्ग। हम भी उस मार्ग पर चलकर तो देखें। ❑

मनुष्य जो चाहता है वह उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति ही है, परंतु उसके लिए उसे चेतना के गहन तल में प्रवेश करना पड़ता है। साधारणत: हम जैसा जीवन जीते हैं, उसमें कोई विशेषता नहीं। जब तक स्रोत की गरिमा अनुरूप जीवन नहीं जिया जाएगा, तब तक उन्नति संभव नहीं। जिसकी आत्मा प्रकाशित है, वही उसे उच्चतर ध्येय की दिशा में लगा पाएगा। इसे ही योग कहते हैं।

भीतर के सब विकार मिट जाएँ, स्पष्टता की प्राप्ति हो, चिंतन,-चरित्र एकरूप बनें यही उसको साधने की प्रक्रिया है। जिस संपदा के हम अधिकारी हैं, वह अत्यंत ही महान है। उसी से नवविधान होता है तथा पीड़ा-अड़चन नहीं रह जाती है।

इस यात्रा में सजग होने की आवश्यकता है। अपने गुण-कौशल को ऊँचाई के प्रति समर्पित कर ही आगे बढ़ा जाता है। धीरे-धीरे स्वत: ही प्रेरणा के वशीभूत हो अद्‌भुत आलोक का विस्तार होता है। यही धन्यता है तथा प्रेम की प्रज्वलित ज्योति भी।

जितने भी बाह्य व्यवहार हैं, वे इससे होने लगते हैं। उसमें राग-द्वेष की भावना नहीं रह जाती, समर्पण बना रहता है तथा उत्सर्ग की नीति ही प्रधानत: रहती है। ऐसा तभी संभव है यदि मनोभूमि उस अनुकूल बन जाए, जिसे कि आदर्श कहा जा सके।

हमारे पास स्वयं को विकसित करने की कला होनी चाहिए। इसके बाद ऊर्जा-उल्लास बने रहते हैं, चित्त सदा शांत तथा समताग्रही रहता है तथा आनंद की रश्मियाँ फूटा करती हैं। जितनी भी विकृतियाँ हैं उनका अस्तित्व मात्र भटकाव के कारण है—उन्हें दूर करना है तो उन पर पैनी दृष्टि रखनी होगी।

सच में निश्चिंतता तो यहीं पर है। संसार के कोलाहल में एक इसी का अवलंबन लिया जाए। बिना रुके अदृश्य को साकार करने वाले ही अध्यात्म पथ के पथिक होते हैं।

उनका तप-तेज कल्याण को जन्म देता है तथा प्राणियों के हित वे जिया करते हैं। ❑

श्रेष्ठ और सर्वोपरि है ग

एक छोटे-से बीज में एक विराट वटवृक्ष का अस्तित्व मौजूद होता है, किंतु वह विराट वटवृक्ष उस बीज में दिखाई नहीं पड़ता, पर जब उस बीज को अनुकूल भौगोलिक जलवायु प्राप्त होती है अर्थात जब उसे मिट्टी, जल, वायु, धूप आदि प्राप्त होते हैं; तब उसी बीज से समय आने पर विराट वटवृक्ष प्रकट हो जाता है। वैसे ही गायत्री मंत्र भी एक ऐसा बीज है; जिसमें वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण आदि बीज रूप में मौजूद हैं।

जब साधक, उपासक, आराधक संपूर्ण श्रद्धा भक्ति, संयम व नियमपूर्वक किसी गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ ब्रह्मज्ञानी गुरु के संरक्षण व मार्गदर्शन में नित्यनिरंतर व दीर्घकाल तक गायत्री मंत्र का जप करता है; तब उस उपासक की आत्मा में गायत्री मंत्र में बीज रूप में संव्याप्त शास्त्रों का ज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान प्रकट होने लगता है। उसे अपनी आत्मा में ब्रह्म के एकत्व का अनुभव होने लगता है।

उसकी आत्मा में ज्ञान और भक्ति के फूल खिल उठते हैं। उसकी आत्मा ज्ञान और भक्ति से प्रकाशित हो उठती है। उसे आत्मबल और ब्रह्मबल की प्राप्ति होती है। उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। उसका लौकिक, भौतिक जीवन भी सुख-शांति और समृद्धि से भर जाता है।

गायत्री-उपासक के जन्म-जन्मांतरों के पापों के पहाड़ धूँ-धूँ कर वैसे ही जल उठते हैं, जैसे जंगल में आग लगने पर पूरा-का-पूरा जंगल जल कर राख हो जाता है। इसलिए गायत्री को पापों का नाश करने वाली कहा गया है।

गायत्री मंत्र के प्रभाव से साधक, उपासक के सूक्ष्मशरीर के विभिन्न शक्तिकेंद्रों के जाग्रत होने से वह दिव्य शक्तियों, दिव्य विशेषताओं, विभूतियों व आत्मबल से संपन्न हो जाता है। गायत्री मंत्र का जप करते हुए प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य अर्थात सविता देव का ध्यान करते-करते साधक, उपासक की बुद्धि तेजस्वी और प्रखर होती जाती है, जिससे उसे भौतिक और आध्यात्मिक—दोनों क्षेत्रों में सफलता मिलने लगती है।

सविता देव का ध्यान व गायत्री मंत्रजप के प्रभाव से आत्मा पर जन्म-जन्मांतरों से चढ़े हुए

तमेव विद्वान न विभाव मृत्योः।

अर्थात उस आत्मा को जान लेने वाला मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है।

अज्ञान, अविद्या के मल मिट जाते हैं और आत्मा प्रकाशरूपी ब्रह्म से सराबोर होकर, ब्रह्मज्ञान से नहाकर पवित्र और प्रकाशित होकर ब्रह्म साक्षात्कार कर पाने में समर्थ और सफल हो जाती है। संसार का समस्त सुख-वैभव, ऐश्वर्य प्रदान करने के कारण ही गायत्री को सुखस्वरूप कहा गया है। साधक के प्राणों की रक्षा करने के कारण ही गायत्री को प्राणस्वरूप कहा गया है। गायत्री की उपासना से उपासक अज्ञान, अभाव और अशक्ति से उत्पन्न दुःखों से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है। इसलिए कहा गया है गायत्री से अधिक पवित्र

करने वाला और कोई मंत्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है।

शास्त्र कहते हैं गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव के समान कोई देव नहीं और गायत्री के समान कोई मंत्र न तो भूतकाल में हुआ है और न ही भविष्य में होगा। जो गायत्री को जान लेता है, वह समस्त विद्याओं को जान लेता है; क्योंकि गायत्री में सभी विधाएँ सन्निहित हैं। गायत्री को जान लेने पर साधक को, उपासक को कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता। ब्रह्मरूपा गायत्री को जप कर साधक स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। अतः भौतिक सुख पाने की चाह रखने वाले और ब्रह्मरस को चखकर ब्रह्मरूप होने की इच्छा रखने वाले प्राणियों के लिए भी एकमात्र आश्रय गायत्री ही है।

ब्रह्मरूपा गायत्री की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, काली, लक्ष्मी आदि भगवान के विभिन्न रूपों की उपासना भी स्वयमेव ही हो जाती है; क्योंकि ब्रह्म ही गायत्री है और गायत्री ही ब्रह्म है। गायत्री के 24 अक्षरों में सभी देवों का वास है। इसलिए तो गायत्री को महामंत्र और मंत्रों का मुकुटमणि कहा गया है। इसे स्पष्ट करते हुए शास्त्र कहते हैं कि 'जो गायत्री को छोड़कर अन्य मंत्रों की उपासना करता है, वह प्रस्तुत पकवान को छोड़कर भिक्षा के लिए घूमने वाले के समान मूर्ख है।'

मनु भगवान ने स्वयं कहा है—"अन्य देवताओं की उपासना करें-न-करें, केवल गायत्री के जप से भी द्विज अक्षय मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।" साधक की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने के कारण गायत्री को कल्पवृक्ष और कामधेनु भी कहा गया है। '**गायत्री सर्वकामधुक्**' अर्थात गायत्री समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली है।

गायत्री ही तप है। गायत्री ही योग है। गायत्री ही ध्यान और साधना है।

गायत्री ब्रह्मरूपा है। इससे बढ़कर सिद्धिदायक साधना कोई और नहीं। गायत्री एकमात्र ऐसा मंत्र है, जिसमें भगवान की स्तुति भी है, प्रार्थना भी है और भगवान का ध्यान भी है। इस मंत्र का सविधि जप करने से, उपासना करने से ब्रह्म की, भगवान की स्तुति, प्रार्थना और ध्यान एक साथ संपन्न हो जाते हैं।

गायत्री सभी मंत्रों व देवों का प्रतिनिधि मंत्र है। इसलिए गायत्री मंत्र का जप कर लेने पर, उपासना कर लेने पर अन्य मंत्रों और देवों की उपासना स्वयमेव ही हो जाती है और अन्य सभी मंत्रों व देवों की उपासना का लाभ एकमात्र गायत्री मंत्र की उपासना से ही प्राप्त हो जाता है।

जैसा कि कहा गया है—**'एकै साधे सब सधै सब साधै सब जाय।'** अर्थात किसी एक को साध लेने मात्र से अन्य सभी सध जाते हैं और सभी को एक साथ साधने के चक्कर में सभी अपने हाथ से निकल जाते हैं। इसलिए तो सनातन संस्कृति में गायत्री मंत्र को सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च मानते हुए इसकी उपासना पर बल दिया गया है और गायत्री मंत्र की उपासना को सर्वोपरि माना गया है।

मंत्र देवता अथवा भगवान का शब्द शरीर है। इसलिए जब उपासक नित्यनिरंतर श्रद्धापूर्वक, विधिपूर्वक, संयमपूर्वक अपने इष्टदेव, आराध्य अथवा भगवान का मंत्र जाप व ध्यान दीर्घकाल तक करता जाता है, तब अंततः उस मंत्र में सन्निहित देवता अथवा भगवान की शक्ति सक्रिय और जाग्रत होने लगती है। उपासक को उस मंत्र के देवता अथवा भगवान की छवि के दर्शन होते हैं तथा हृदय व आत्मा में उनकी आह्लादकारी व अलौकिक अनुभूति होती है।

गायत्री मंत्र के देवता सविता अर्थात प्रातःकालीन उदीयमान भगवान सूर्य हैं। अस्तु गायत्री मंत्र का जप करते हुए निर्गुण, निराकार ब्रह्म का ही प्रकाश रूप में, प्रातःकालीन उदीयमान सूर्य के रूप में ध्यान किया जाता है। निर्गुण, निराकार ब्रह्म का प्रकाश रूप में ध्यान करते-करते ब्रह्म का प्रकाश साधक की आत्मा में प्रकट होता जाता है और साधक को, उपासक को ब्रह्म और आत्मा के एकत्व की अनुभूति होती है और साधक अपने उसी आत्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप में स्थित होकर पल-पल ब्रह्मानंद रस का पान करता है।

भौतिक सुख और ब्रह्मसुख की प्राप्ति के लिए गायत्री मंत्र की उपासना निस्संदेह श्रेष्ठ और सर्वोपरि है। गायत्री-उपासना से होने वाले भौतिक और आध्यात्मिक लाभ असंदिग्ध हैं, किंतु कई बार वांछित परिणाम में देरी होती है। वस्तुत: गायत्री-उपासना, गायत्री-साधना से उत्पन्न शक्ति का एक अंश पूर्वजन्मों के पाप-निवारण में लग जाने से ही यह विलंब होता है। अत: उपासक को अधीर नहीं होना चाहिए और दीर्घकाल तक, नियम, संयम व धैर्यपूर्वक गायत्री-उपासना, गायत्री-साधना करते रहना चाहिए। ❑

विश्व के सबसे प्रसन्न लोगों में वर्ल्ड हैप्पीनेस रिपोर्ट के सर्वेक्षण के आधार पर नॉर्डिक देश आते हैं, जो विगत कई वर्षों से शीर्ष स्थान पर स्थित हैं। इनमें फिनलैंड, नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क, आइसलैंड जैसे देश आते हैं। यूरोप के उत्तरी छोर पर स्थित इन शीतप्रधान देशों में प्रसन्नता के कई कारण हैं; जिनमें यहाँ के कल्याणकारी राज्य के साथ लोगों की संतुलित जीवनशैली, सादगी, प्रकृति से जुड़ाव जैसे पहलू उल्लेख़नीय हैं। प्रस्तुत हैं इनसे जुड़ी कुछ अनुकरणीय आदतें जिनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

यहाँ के लोगों का कार्य विभाजन उल्लेखनीय है। वर्ष के अधिकांश समय बरफ रहने व अत्यधिक ठंढ के चलते यहाँ लोगों के सोने-जागने व कार्य करने के घंटे लगभग निर्धारित रहते हैं। पर्याप्त नींद, व्यक्तिगत कार्य एवं व्यावसायिक जीवन के संतुलन के चलते यहाँ लोग पेशेवर तनाव से मुक्त रहते हैं और एक बेहतरीन जीवन जीते हैं। प्रकृति का संग-साथ दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक है।

प्रकृति यहाँ के लोगों के जीवन का अभिन्न हिस्सा रहती है। ये हर मौसम का आनंद लेना जानते हैं। इनकी सोच रहती है कि बाहर किसी भी तरह का मौसम हो, कोई भी बुरा मौसम नहीं होता। बुरी होती है तो वह है हमारी जीवनशैली। अतः यहाँ लोग स्वयं को व्यस्त रखते हैं, ऋतु अनुकूल वस्त्र पहनते हैं तथा जंगलों में फल तोड़ने से लेकर प्रकृति की गोद में पैदल यात्रा (हाईकिंग) का आनंद लेते हैं।

शहर में रहते हुए भी प्रकृति के समीप रहते हैं व पार्क में समय बिताते हैं। यहाँ लोग दिखावे एवं अधिक संग्रह की तुलना में सादगी एवं गुणवत्तापरक जीवन पर अधिक ध्यान देते हैं। यहाँ जीवन सादगी से भरा रहता है। लोगों का ध्यान बाहरी दिखावे से अधिक आंतरिक गुणवत्ता पर रहता है।

इनका ध्यान व्यावहारिकता तथा सादगी से भरा रहता है—जहाँ हर चीज का एक मकसद रहता है, मात्रा से अधिक गुणवत्ता को अधिक महत्त्व

ध्यान करते समय ईश्वर में डूब जाना चाहिए। ऊपर-ऊपर तैरने से क्या पानी के नीचे वाले रत्न मिल सकते हैं।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

दिया जाता है। यहाँ लोग मिनिमलिस्ट दर्शन पर विश्वास करते हैं अर्थात कम-से-कम किंतु टिकाऊ चीजों का प्रयोग करते हैं। आश्चर्य नहीं कि नॉर्डिक घरों में लकड़ी व पत्थरों का बेहतरीन संयोजन करते हुए मनभावन स्थान प्रबंधन को देखा जा सकता है।

यहाँ घर-परिवार व परिवेश में अमूमन शांत वातावरण रहता है। घरों में शांति के वातावरण को महत्त्व दिया जाता है। घर की तरह कॉफी हाउस या सार्वजनिक स्थलों में भी यहाँ शांति को प्राथमिकता दी जाती है, जहाँ दीपक या मोमबत्ती का महीन

प्रकाश रहता है। शोर के बजाय हलका संगीत यहाँ वातावरण में गूँजता रहता है।

हलकी सुगंध इनके परिवेश को सुवासित रखती है, जिसके मध्य एक विश्रांतिपूर्ण अनुभव मिलता है तथा व्यक्ति की संवेदनशीलता बनी रहती है। यहाँ आपसी व्यवहार में स्पष्ट सीमा, मर्यादा और संतुलन रहता है, जो यहाँ के लोगों की एक अलग विशेषता है। लोग ईमानदार संवाद के पैमानों का अनुसरण करते हैं। यहाँ खुला एवं सीधा संवाद प्रोत्साहित किया जाता है।

वैयक्तिक और पेशेवर संबंधों की अपनी सीमाएँ रहती हैं एवं दोनों जीवन के बीच संतुलन को साधा जाता है। सबकी अपनी सीमाएँ मानते हुए इनका सम्मान किया जाता है। यदि कोई हर सामाजिक घटना में किसी कारणवश नहीं भाग ले पाता है या उसका मन नहीं करता है तो इसका सम्मान किया जाता है। किसी पर जबरन कोई नियम लागू नहीं किया जाता है।

आपसी संबंध विश्वास पर आधारित रहते हैं, सतही या औपचारिक भावों पर नहीं। साथ ही जो कार्य प्रारंभ किया जाता है, उसे निष्कर्ष तक पहुँचाने का भाव रहता है, फिर वह अपना कार्य हो, घरेलू हो या कोई पेशेवर कार्य। सर्वविदित है कि किसी कार्य में विलंब या अधूरापन, तनाव का कारण बनता है और आत्मविश्वास कम करता है। हर पूरा कार्य उपलब्धि के भाव के साथ स्वाभिमान को बढ़ाता है। यहाँ के लोग इसमें विश्वास करते हैं, जो उनकी प्रसन्नता में इजाफा करता है। समय का मूल्य जानना एवं नियमितता इनके अन्य गुण हैं।

यहाँ समय को मूल्यवान माना जाता है और नियमितता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यहाँ हर गोष्ठी समय पर प्रारंभ होती है, बल्कि सभी समय से कुछ पहले पहुँचते हैं। इससे दूसरों के

समय की कीमत की समझ व संवेदनशीलता प्रदर्शित होती है, जो परस्पर सम्मान की नींव को सुदृढ़ करती है। जीवन के हर क्षेत्र में इसे लागू किया जाता है। मीटिंग में पहुँचने में यदि किसी कारणवश देरी हो रही हो, तो समय से पहले सूचित किया जाता है तथा किसी को इंतजार नहीं करवाया जाता।

एकांत सेवन, स्वार्थ-परमार्थ का संतुलन भी यहाँ के जीवन का एक अंग है; जहाँ सामाजिक जीवन से बचना स्वार्थ माना जाता है, वहीं एकांत भी स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना जाता है। गाँव के एकांत-शांत परिवेश में कुटीर बने रहते हैं, जहाँ नित्य शहरी जीवन के तनाव से परेशान लोग रह कर कुछ सुकून के पल बिताते हैं। यहाँ मौन को बुरा नहीं माना जाता, वरन ठहराव को संवाद का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। सीधे संवाद में कूदने के बजाय बीच में ठहराव—संवाद को और गहरा एवं अर्थपूर्ण बनाता है।

यहाँ हर समय बोलना अच्छा नहीं माना जाता, जितना जरूरी है, उतना ही ठीक माना जाता है। यहाँ सामाजिक दूरी जीवन का एक अंग है एवं वैयक्तिक जीवन का सम्मान किया जाता है। खड़े, बैठे, बातचीत करते हुए व अनजान लोगों के बीच इसका पालन किया जाता है। आश्चर्य नहीं कि इसके अभ्यास के चलते यहाँ कोविड महामारी के दौरान कठिन समय सामान्य जीवन की तरह बीता, जिसके लोग पहले से ही अभ्यस्त थे।

शारीरिक सीमाएँ ही नहीं, भावनात्मक सीमाओं को भी यहाँ महत्त्व दिया जाता है। इसके आधार पर किसी पर भ्रांतिपूर्ण राय नहीं बनाई जाती। सामुदायिक जीवन में यहाँ प्रतिद्वंद्विता से अधिक सहकार के भाव को प्रधानता दी जाती है। इस तरह यहाँ लोग सादगी, शांति एवं संतोषप्रधान

जीवन को अधिक महत्त्व देते हैं। लोग श्रम की गरिमा को जानते हैं। यहाँ किसी काम को छोटा या बड़ा नहीं माना जाता तथा लोग नित्य के छोटे कार्यों को भी तन्मयता के साथ पूरा करते हैं। दूसरों को प्रभावित करने के बजाय आंतरिक शांति एवं वैयक्तिक संतोष को तथा आपसी संबंधों में सद्भाव को महत्त्व देते हैं, जिसे धन से नहीं आँका जा सकता।

स्वस्थ जीवन भी यहाँ की प्रसन्नता का एक कारण है, जिसका आधार रहता है—पौष्टिक आहार। इसमें मौसमी सब्जियाँ, अप्रसंस्कृत आहार, समुद्री भोजन, साबुत अन्न आदि शामिल रहते हैं। इस

तरह नॉर्डिक जीवन में प्रसन्नता के कई कारण हैं, जो संतुलित जीवनशैली, प्रकृति से जुड़ाव व सोच के तरीके से जुड़े हुए हैं। इसकी पृष्ठभूमि में यहाँ की सरकार की कल्याणकारी योजनाएँ, आपसी विश्वास, निर्णय लेने की स्वतंत्रता तथा निम्न आर्थिक विषमता की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जो जीवन की गुणवत्ता के साथ लोगों में प्रसन्नता के भाव को बनाए रखते हैं।

व्यक्तिगत एवं पारिवारिक-सामाजिक जीवन में संतुष्टि-संतुलन एवं प्रसन्नता का इच्छुक हर व्यक्ति इनकी अनुकरणीय आदतों से सीख लेते हुए जीवन को बेहतरीन बना सकता है। ❑

पांडा का रोच

कुंगफू पांडा जैसी चर्चित फिल्मों के माध्यम से बच्चों व बड़ों के बीच लोकप्रिय पांडा एक रोचक प्राणी है, जो मूलतः चीन के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता है। भालू जैसा गोल-मटोल व विशाल दिखने वाला पांडा स्वभाव से हिंसक नहीं होता, फिर इसके शरीर के काले धब्बे, आँखें और कान इसे भालू से बिलकुल भिन्न बना देते हैं। पांडा को शांति का प्रतीक माना जाता है। आज विश्व भर में लगभग 2250 पांडा बचे हुए हैं, जिनमें से 1864 जंगलों में रहते हैं और 400 के लगभग संरक्षित वातावरण में पल रहे हैं।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि जन्म के समय पांडा के बच्चे का भार मात्र 150 ग्राम होता है, जो बड़े होने पर मादा के रूप में 70 से 120 किलो और नर रूप में 160 किलो तक रहता है। इसकी ऊँचाई 6 फीट तक रहती है और यह 20 से 30 वर्ष तक जीवित रहता है। पांडा एक बहुत ही आलसी प्राणी है, जिसका अधिकांश समय खाने व सोने में ही निकल जाता है। 12 से 14 घंटे तो इसके खाने में ही बीत जाते हैं। हालाँकि ये तैरने में भी माहिर होते हैं और पेड़ पर चढ़ना व रहना पसंद करते हैं।

कई बार तो इन्हें ऊँचे पेड़ों की चोटी पर विश्राम करते देखा जा सकता है और कई बार ये पेड़ों पर ही अपना घर बना लेते हैं। बाँस के जंगलों में रहने वाले पांडा का मुख्य आहार बाँस है। बाँस के अंकुर और पत्तियाँ इसका 99 प्रतिशत से अधिक आहार रहता है और यह एक दिन में 10 से 20 किलो तक बाँस खा सकता है। इसके अतिरिक्त

जंगल में पांडा कभी-कभी अन्य घास, जंगली कंद आदि भी खाते हैं।

कैद में ये विशेष रूप से तैयार भोजन के साथ मधु, मछली, अंडे, झाड़ी के पत्ते, कद्दू, गाजर आदि बड़े चाव से खाते देखे जा सकते हैं। शोध के आधार पर यह भी पता चला है कि पांडा की आँतें मांस को पचाने में सक्षम होती हैं, इनका पाचन तंत्र सिंह के समान होता है, फिर भी ये अधिकांशत: बाँस खाकर जीवित रहते हैं। इस तरह पांडा उन विशिष्ट जीवों में से एक है, जो मांसाहारी होते हुए भी शाकाहारी बने। इसका कारण इनकी बहुत ही धीमी चयापचय दर है। अन्य सभी स्तनपायी जीवों में इनकी चयापचय दर सबसे कम पाई गई है।

साथ ही शरीर के हिसाब से इनके अंग-अवयव छोटे पाए गए हैं। मस्तिष्क अपेक्षित आकार का 82 प्रतिशत, गुरदे 74.5 प्रतिशत, लिवर 62.8 प्रतिशत देखे गए हैं। जंगल में विचरण करने वाले पांडा पर हुए शोध से पता चला है कि ये एक घंटे में मुश्किल से 26.9 मीटर चलते हैं। इतनी निम्न चयापचय दर के रहते ये सरदी का सामना कैसे करते हैं, शरीर को कैसे गरम रखते हैं, यह भी विचारणीय है। इसके लिए प्रकृति ने इनको एक मोटा फर कोट दिया है। इसके कारण जो कुछ थोड़ी-बहुत ऊर्जा इनकी न्यून चयापचय दर से उत्पन्न होती है, उसको यह कोट संरक्षित रखता है।

इनकी चमड़ी का तापमान सतह से 10 डिगरी सेंटीग्रेड कम पाया गया है। पांडा से जुड़े अन्य रोचक तथ्य कुछ इस प्रकार से हैं। ये भालू की तरह तैर सकते हैं, लेकिन ये शीतनिद्रा में नहीं जाते;

क्योंकि ये लंबे समय तक ऊर्जा को संगृहीत नहीं कर सकते। अत: हर 12 घंटे में इनको आहार की आवश्यकता पड़ती है।

पांडा फॉसिल से पता चलता है कि पांडा तीस लाख वर्ष से धरती पर विचरण कर रहे हैं। आज इनकी संख्या सीमित रह गई है और ये विलुप्ति के कगार पर हैं।

पांडा मात्र 6 माह की आयु में वृक्ष पर चढ़ सकते हैं। इस तरह चीन के कुछ ही क्षेत्रों में पाया जाने वाला पांडा वहाँ की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है और इसे शांति और मित्रता का प्रतीक माना जाता है। शांति के साथ यह संयम, पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता जैसे गुणों को भी दरसाता है। इस शांत, सुंदर और विशालकाय प्राणी की जीवनशैली में कई विशेषताएँ हैं, जिनसे मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है।

धैर्य और अध्यवसाय पांडा की एक विशेषता है। पांडा दिन का अधिकांश समय विश्राम में बिताते हैं, जिससे हम धैर्य और संयम की सीख ले सकते हैं। पांडा धीरे-धीरे चलते हैं, लेकिन अपने लक्ष्य तक पहुँचकर ही दम लेते हैं और रास्ते में गिरते-पड़ते हुए भी हार नहीं मानते हैं। इस तरह तेजी से दौड़ते जीवन के बीच भी धैर्यपूर्वक काम करने की स्थिरता को हम पांडा से सीख सकते हैं और रास्ते के व्यवधानों के बावजूद बिना हिम्मत हारे अपने लक्ष्य की ओर अनवरत बढ़ते रह सकते हैं।

पांडा बहुत ही सरल, सहज एवं संतुष्ट जीवन जीता है। यह मुख्यतया बाँस खाता है और सहज रूप से उपलब्ध चीजों का सेवन करता है। इस तरह हम भी आज के आपा-धापी भरे जीवन में मात्र आवश्यक चीजों पर ध्यान केंद्रित कर, उपलब्ध संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए एक सादगी भरा जीवन जी सकते हैं।

पांडा अधिक तनाव नहीं लेता है और बहुत ही सहज जीवन जीता है। हम भी इससे सरल, सहज जीवन व अधिक तनाव न लेने की प्रेरणा ले सकते हैं। पांडा अपने आस-पास की चीजों से संतुष्ट रहता है तथा अधिक की इच्छा नहीं करता है। यह संतुष्टि का भाव भी अनुकरणीय है। पांडा प्रकृति के साथ तालमेल बिठाते हुए, पर्यावरण के अनुकूल जीवन जीता है।

इसके इस स्वभाव से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। पांडा में वातावरण के अनुसार स्वयं को

समुद्र-मंथन से निकले विष को पीते समय शिवजी द्वारा कुछ बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। संयोगवश यह वही मिट्टी थी, जिससे ब्रह्माजी शरीरों का निर्माण करते थे। ब्रह्माजी भूलवश उसी मिट्टी से मनुष्य के शरीर बनाते रहे। विष की बूँदें मनुष्य में ईर्ष्या के रूप में प्रकट हुईं और तभी से मनुष्य ईर्ष्यारूपी विष से जलता आ रहा है।

ढलने की विशेषता रहती है, जो हमें ज़ीवन की चुनौतियों का सामना करते हुए परिस्थितियों के अनुसार ढलने की सीख देता है।

पांडा एक सामाजिक प्राणी है, जो अपने परिवार के प्रति समर्पित रहता है और ये एकदूसरे का सहयोग करते हैं और हमें परिवार के साथ रहने, उनको समय देने व उनका ध्यान रखने की सीख देते हैं। अपने व्यावसायिक जीवन के साथ हमें परिवार को उचित महत्त्व देना चाहिए और

सामाजिक प्राणी होने के नाते सहयोग-सहकार भरा जीवन जीना चाहिए।

पांडा दिखने में कोमल प्रतीत होते हैं, लेकिन ये बहुत शक्तिशाली होते हैं और अकेले रहने में सक्षम होते हैं। ये हमें अंदर से कोमल, किंतु बाहर से मजबूत होने की सीख देते हैं, साथ ही स्वयं की आंतरिक शक्तियों पर विश्वास के साथ अपनी क्षमताओं के उपयोग की सीख भी इनसे मिलती है। इस तरह पांडा से मिलने वाला आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान का संदेश उल्लेखनीय है।

पांडा को जीवन की छोटी-छोटी चीजों का आनंद लेते देखा जा सकता है और यह सकारात्मक दृष्टिकोण से भरा रहता है। हम भी जीवन के छोटे-से-छोटे पलों का आनंद लेते हुए, जीवन के उतार-चढ़ाव के बीच इसके सकारात्मक पक्षों पर ध्यान

केंद्रित करते हुए प्रसन्न रहने का प्रयास कर सकते हैं।

आश्चर्य नहीं कि पांडा को चीन के राष्ट्रीय चिह्न के रूप में उपयोग किया जाता है। सन् 2008 के ग्रीष्मकालीन ओलंपिक्स में भी इसे एक प्रतीक के रूप में दिखाया गया था। वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर के लोगो के रूप में भी इसका उपयोग किया जाता है। पांडा अभी विलुप्ति के कगार पर जीवन के लिए संघर्ष कर रहा एक प्राणी है। इसके संरक्षण के प्रयास चल रहे हैं, जिसके चलते यह चीन के बाहर भी कुछ स्थानों पर संरक्षण में पलते देखा जा सकता है। कुल मिलाकर पांडा का जीवन हमें बहुत कुछ संदेश देता है, जिससे प्रेरणा लेते हुए हम वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन को और बेहतर बना सकते हैं। ❑

जिम्मेदार

हर व्यक्ति स्वयं के लिए जिम्मेदार है। हम आज जो कुछ भी हैं, वह हमारे पूर्वकृत कर्मों का प्रतिफल है और हम जो वर्तमान में कर रहे हैं, कल इसका सम्मिलित परिणाम फलित होना है। इस तरह हम अपने भविष्य के निर्माता और स्वयं के भाग्य विधाता आप हैं।

कल यदि कुछ अपने अनुकूल नहीं होता है, तो इसके लिए हम चाहें तो परिस्थितियों को दोषी ठहरा सकते हैं, लेकिन अध्यात्म पथ का साहसी शूरमा पूरी जिम्मेदारी स्वयं पर लेता है। किसी दूसरे पर अपनी असफलता का ठीकरा नहीं फोड़ता।

जीवन में व्यक्ति को जिस परम लक्ष्य को सिद्ध करना है, उसमें किसी तरह के परदोषारोपण की गुंजाइश नहीं। हम अपनी असफलता के लिए किसी को दोषी ठहराकर झूठा संतोष पा सकते हैं या अपनी झूठी इज्जत को बचाने की कुचेष्टा कर सकते हैं या जिम्मेदारी से बचने का प्रयास कर सकते हैं, लेकिन अंतरात्मा के पास इसका कोई विकल्प नहीं।

वह सब जानती है और ईश्वर का अकाट्य विधान अपनी जगह तत्क्षण लागू हो जाता है। अत: हम जैसा अपना भविष्य चाहते हैं, उसके अनुरूप वर्तमान को सजाना-सँवारना प्रारंभ कर दें तथा अपने वर्तमान का सम्यक मूल्यांकन करें।

अपनी क्षमताओं, शक्तियों व विशेषताओं से परिचित हो जाएँ, इनके आधार पर लक्ष्य का निर्धारण करें। साथ ही अपनी कमजोरियों, न्यूनताओं का भी ईमानदार मूल्यांकन करें, जिन पर कार्य किया जाना शेष है और नित्यप्रति संकल्पित प्रयास के साथ उस ओर आगे बढ़ें।

जीवन जिएँ

कोई कारण नहीं कि जीवन में अधिक देर तक हम वांछित सफलता से वंचित रहेंगे। साथ ही यह नेक कार्य बिना किसी से तुलना या कटाक्ष के दबाव में करें और नित्य अकिंचन ही सही, परंतु अपनी छोटी-सी प्रगति पर उत्साहित होवें और उसके आधार पर अगला कदम उठाएँ।

दूसरों से तुलना करने पर हम इतना हतोत्साहित हो सकते हैं कि फिर अगला कदम उठाना ही कठिन पड़े तथा स्वयं से निचले पायदान पर खड़े व्यक्तियों को देखकर हम अपनी श्रेष्ठता के दंभ में बह सकते हैं या आत्ममुग्धता की स्थिति में आ सकते हैं। दोनों ही स्थिति में हमारे प्रयास बुरी तरह से शिथिल होते हैं। अत: बाहरी उत्प्रेरक के बजाय, अंत:प्रेरणा से जीवन के प्रगति-पथ पर आगे बढ़ें।

इसमें स्वाध्याय की शक्ति को नजरअंदाज न करें। इसका भरपूर लाभ उठाएँ। युग की श्रेष्ठतम विभूतियों, विचारकों एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शकों के साहित्य का पारायण करें, जिसके लाभ दोतरफा होते हैं।

एक तो इनके प्रकाश में जीवन के अँधेरे कोने-काँतरों में पड़ी दुर्बलताओं, अवगुणों का बोध होता है और साथ ही जीवन की सकल संभावनाओं से भी परिचय हो पाता है। साथ ही संघर्ष के पलों में इनके उदाहरणों से सबल प्रेरणा भी मिलती रहती है। अत: हर पल को पूरे होशोहवास में जिएँ, सजगता के साथ अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करें और अपने ईमानदारीपूर्ण पुरुषार्थ के आधार पर अपनी संकल्प सृष्टि को मूर्तरूप दें। यही सुखी जीवन का आधार है। ❑

शांति का जन्म

शांति का प्रसार करना ही सदा से भारत का आदर्श रहा है तथा इस निमित्त आज भी समाज को आगे आने एवं अपनी प्रतिभा का परिचय देने की आवश्यकता है। यदि समाज इस सत्य के प्रति जाग जाए कि भीतर की शांति को बाहरी क्रियाकलापों से नहीं खरीदा जा सकता है एवं एक बार यदि वह मिल जाए, तो फिर बाहर उसके लिए भटकना भी नहीं पड़ता है, मात्र इतनी-सी बात लोगों को यदि समझ आ जाए तो क्रांति का बिगुल बजते देर नहीं लगेगी।

इनसान की मान्यताओं में, उसके चाल-चलन के ढंग में एवं उसकी सभी सुविधाओं एवं अभिरुचियों में आश्चर्यजनक परिवर्तन आ जाता है, जब वह इस केंद्रीय सत्य को समझ ले कि उसका जीवन किसी उच्चतर शक्ति के द्वारा कार्यशील है एवं उसे मात्र अपने को एक साधन के रूप में प्रयुक्त करना है। यही आध्यात्मिकता है, इसके अलावा आध्यात्मिकता का कोई सूत्र नहीं, कोई पैमाना नहीं।

आध्यात्मिक व्यक्ति मात्र इस आंतरिक चाल के अनुसार ही चल पाता है तथा उसका हर प्रयोजन दिव्यता की दिशा में, स्वयं को ऊँचा उठाकर, इस जगती की सेवा में लगने योग्य होता है। भारतीय चिंतन पद्धति इसी एक सत्य का प्रतिनिधित्व करती है एवं हरेक ग्रंथ में हमें यही बात देखने को मिलेगी कि सत्य किसी व्यक्ति से अनछुआ नहीं, मात्र सत्य के प्रति ग्रहणशीलता को बढ़ाने की दिशा में बढ़ना होता है।

ाता भारत

दर्शन की किसी भी शाखा को देख लीजिए, उपनिषदों का कोई भी उदाहरण ले लीजिए, भगवद्गीता के सार को ग्रहण करिए या बुद्ध, महावीर, नानक की सीख को ही ले लीजिए। आप देखेंगे कि ये सब एक अकाट्य सत्य की ओर हमारे ध्यान को ले चलते हैं। वह यह कि

आंतरिक आस्थाएँ ही वे विभूतियाँ हैं, जो व्यक्ति के चिंतन, चरित्र और व्यवहार को परिष्कृत करती हैं तथा व्यक्तित्व को प्रखर, प्रामाणिक और प्रतिभावान बनाती हैं। इसी आधार पर वे क्षमताएँ उभरती हैं, जो अनेकानेक सफलताओं की उद्गम स्त्रोत हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

जीवन का स्त्रोत आपके भीतर ही है तथा बाहर जिस भी चीज को आप ढूँढ़ने चलेंगे वह या तो आपके अज्ञान का विस्तार होगा या आपकी प्रज्ञा का प्रकटीकरण तथा जीवन को किस दृष्टि से देखना चाहिए, यह वह भीतर वाला स्त्रोत ही आपको बताएगा, न कि आपके मन की विविध

वृत्तियाँ या आपके सोचने-समझने का प्रचलित ढंग।

इसी तथ्य को जब दूसरे तरीके से हम समझते हैं तो कह देते हैं कि यह संसार माया है, परंतु माया से तात्पर्य किसी अनजान भूल-भुलैया से नहीं, बल्कि इस संसार में मिट जाने की आपकी ललक से, आपके स्वार्थ एवं अहंकार से है। भारत की भूमि पर जब यह आध्यात्मिक चिंतन विकसित हो रहा था, तब ऋषियों ने जिन वेद ऋचाओं का उच्चारण किया, वे कहीं से ढूँढ़ नहीं ली गईं थीं, बल्कि प्रकृति में व्याप्त उस विराट ब्रह्म की ऊर्जा तरंग को स्पर्श कर, वे स्वयमेव उस सत्य के उद्‌घाटक बन गए, जो कि जीवन की परिपूर्णता का संदेश लेकर, उनके समक्ष प्रस्तुत हुआ था।

आधुनिक समय में जब विवेकानंद उन ऋषियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो वे उस संदेश को जन-जन तक पहुँचाने, उसकी अलौकिक आभा

का विस्तार करने एवं उसे एक नया आयाम देने को चल पड़ते हैं।

वे उसे वेदांत की भाषा में, भारतीय दर्शन की उच्चतम प्रतिच्छाया के रूप में, समस्त विश्व को एकरूप करने वाली विचारधारा के संदर्भ में प्रयुक्त करते हैं एवं भारत समेत विश्व की जनता उनकी अद्‌भुत गुण-मेधा को स्वीकार, एक नए ही रंग-रूप में प्रतिभासित होती है।

यही अध्यात्म का उच्चतम चिंतन कुछ वर्षों बाद योगीराज अरविंद, पूज्य गुरुदेव एवं रमन महर्षि की साधनापद्धतियों के रूप में मुखरित होता है एवं भविष्य में इसके और भी बड़े परिमाण में विकसित होने एवं तदनुरूप जन-जन की आवाज बनने की दिशा के आसार हैं। यही आध्यात्मिक चिंतनशैली भारत की विश्व को अमूल्य धरोहर है तथा इसे ही संरक्षित करना वर्तमान युग में हम सब का कर्त्तव्य है। ❑

अनजान न बनें, सीखने

'अनजान होना उतनी लज्जा की बात नहीं, जितना कि सीखने के लिए तैयार नहीं होना'– परमपूज्य गुरुदेव की यह उक्ति जीवन को सर्वांग सुंदर रूप में जीने के अभीप्सु हर व्यक्ति के लिए गुरुमंत्र की भाँति है।

सद्गुरु के सच्चे शिष्य होने के नाते हर परिजन को इसे हृदयंगम करने व जीवन में अपनाने के लिए तत्पर रहना चाहिए। अनजान होना कोई लज्जा की बात नहीं—विश्व का कोई भी इनसान सर्वज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता है।

कोई अपने क्षेत्र में विशेषज्ञता एवं विद्वत्ता के शीर्ष पर ही क्यों न स्थित हो, उसकी वहाँ तक की पहुँच भी सीखने के किसी प्राथमिक चरण से ही हुई होती है और धीरे-धीरे ही वह वर्तमान विशिष्टता तक पहुँचता है और साथ ही अपने विषय का निष्णात अधिकारी होते हुए भी किसी नए क्षेत्र में वह नवप्रवेशी की ही स्थिति में होता है। जीवन के जिस क्षेत्र में अभी तक वह किसी कारणवश अनभिज्ञ रह गया है तो कोई कारण नहीं कि वह सदा इससे अनजान ही बना रहेगा या वह उसे नहीं कर सकेगा।

वह जब चाहे इस अनछुए क्षेत्र के अनावरण व अन्वेषण की शुरुआत कर सकता है, इसमें प्रवेश कर सकता है और सतत इसके नित नए आयामों से परिचय प्राप्त करते हुए इसको जीवन का अंग बना सकता है; क्योंकि आज के सोशल मीडिया एवं इंटरनेट के युग में शिक्षकों का, कुशल मार्गदर्शन का अभाव नहीं।

फिर आएदिन ऐसे आयोजन होते रहते हैं, अवसर आते रहते हैं, जहाँ विनीत विद्यार्थी बनकर

लिए तैयार रहें

अपने अनछुए क्षेत्रों में ज्ञानवृद्धि का लाभ लिया जा सकता है, किसी नए कौशल को सीखा जा सकता है और यदि अनुभवी गुरुजनों का कुशल मार्गदर्शन साथ में उपलब्ध हो तो छोटा बनने, शिक्षार्थी बनने में कैसा संकोच एवं कैसा पलायन? फिर जीवन इतना बहुआयामी और जटिल है कि यहाँ हर व्यक्ति को जीवनपर्यंत एक विद्यार्थी बनकर रहना पड़ता है।

किसी भी नए क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए सीखने की प्रक्रिया प्राथमिक चरणों से ही आगे बढ़ती है और ऐसे में सीखने की ललक रखने वाले लोगों के लिए संकोच व लज्जा कोई माने नहीं रखती। जब कुछ नया सीखने का भाव अंत:करण में जाग जाता है तो वे जहाँ से संभव हो ज्ञान को बटोरते हैं, उसे ग्रहण करते हैं और क्रमश: उस क्षेत्र में स्वयं को निष्णात बनाते हैं, अपना अधिकार जमाते हैं।

जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनने के लाभ अनगिनत हैं। इससे जीवन में नवीनता बनी रहती है, नित नए लक्ष्य की ओर व्यक्ति बढ़ रहा होता है। जीवन में नित नई आशा, उत्साह, उमंग का संचार होता रहता है। आत्मविश्वास में नित नई वृद्धि होती रहती है। मन-बुद्धि के आयामों का विस्तार होता है।

ऐसे में बोरियत के भाव पास फटकने तक नहीं पाते। व्यक्ति के तन, मन और आत्मा के सर्वांगीण स्वास्थ्य को इनसे पोषण मिल रहा होता है। एक उद्देश्यपूर्ण जीवन की आवश्यकता पूर्ण होती है।

जीवन में स्वावलंबन के अवसर हाथ में आते हैं, असुरक्षा का भाव नहीं रहता। समाज में कुछ

सार्थक संवाद एवं योगदान की संतुष्टि मिलती है और एक नए क्षेत्र में अधिकार के साथ जाने-अनजाने में विद्यार्थी एक श्रेष्ठ शिक्षक की भूमिका में प्रतिष्ठित हो रहा होता है।

आश्चर्य नहीं कि जीवनपर्यंत विद्यार्थी बनने के इन गुणों का आस्वादन कर चुका व्यक्ति फिर कहीं रुकता नहीं, कहीं ठहरता नहीं। जीवन के किसी भी पड़ाव में उसे कुछ नया सीखते हुए देखा जा सकता है। उसमें किसी तरह के संकोच, लज्जा या प्रमाद के भाव नहीं पनप सकते।

ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जिन्हें जब होश आया तो वे एक विद्यार्थी बनकर सीखने की प्रक्रिया में जुट गए। आज भी आएदिन मीडिया में, समाचारपत्रों की सुर्खियों में ऐसे साठ, सत्तर, अस्सी, यहाँ तक कि नब्बे के दशक में पहुँचे बड़े-बुजुर्गों को डिग्री से लेकर नए कौशल को सीखते हुए देखा जा सकता है।

ताउम्र सीखने, आगे बढ़ने, अपने सर्वांगीण विकास एवं उत्कर्ष का ये भाव निश्चित रूप से प्रशंसनीय है, अनुकरणीय है, प्रेरक एवं वंदनीय है। इसके विपरीत जो नया सीखने में लज्जा का अनुभव करते हैं, लोग क्या कहेंगे, इसकी चिंता में डूबे रहते हैं तो फिर उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसे मानव जीवन की एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही कहना पड़ेगा, जहाँ व्यक्ति स्वयं ही अपने विकास में बाधक तत्त्व बन जाता है, अपनी प्रगति पथ का रोड़ा बन जाता है।

इसके मूल में उसकी भ्रामक सोच ही जिम्मेदार मानी जा सकती है, जो उसे अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचने से रोकती है और ऐसे में व्यक्ति अपने हाथों जो भाग्य गढ़ रहा होता है, उसमें मिलती है, अनजान रहकर जीने की जलन, कुंठा और आए अवसरों से हाथ धोने का पश्चात्ताप; क्योंकि नए अवसरों के लिए जिस न्यूनतम पात्रता का विकास अभीष्ट था, वह जीवनपर्यंत ज्ञानार्जन के अभाव में नहीं हो पाता।

नित नए अवसर इस पात्रता के अभाव में हाथ से छूटते जाते हैं। इस तरह जीवन में असफलता का, असुरक्षा का भाव बढ़ता जाता है, साथ ही कुछ न सीख पाने का पश्चात्ताप व वेदना अंतर्मन को कचोटती रहती है। इस विकट स्थिति के मूल में अपना सूक्ष्म अहं एवं प्रमाद ही छिपा रहता है।

इस स्थिति से उबरने का एक ही उपाय है, स्वयं के झूठे अहं पर अंकुश लगाया जाए, अपने उत्कर्ष के लिए एक सच्चा विद्यार्थी बना जाए, जो ज्ञानार्जन के लिए कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार हो। हाँ! यह थोड़े-से साहस और थोड़ी-सी समझदारी की माँग करता है, लेकिन जो अपने सर्वांगीण उत्कर्ष के लिए जागरूक हैं, तो वे अपनी इस लज्जा को त्यागकर विद्यार्थी भाव से जीते हैं और प्रशिक्षण की आवश्यक प्रक्रिया से गुजरते हैं।

आगे चलकर ये ही विद्याप्रेमी व्यक्ति साँचा बनकर आदर्श प्रशिक्षक के रूप में जीवनपर्यंत विद्यार्थी भाव वाली पीढ़ी को गढ़ते हैं। ❑

गंगोत्तरी से तपोवन

गंगोत्तरी से गुजरते हुए पूज्य गुरुदेव आगे अपने गंतव्य की ओर बढ़े, जो था हिमालय का तपोवन—नंदनवन का दुर्गम क्षेत्र, जहाँ दादागुरु से मुलाकात होनी थी। इसके लिए गंगोत्तरी से गोमुख का 18 मील का कठिन मार्ग पगडंडी के सहारे पार करना था। सरदी का मौसम था, जिसमें अब तीर्थयात्रियों की आवाजाही न्यूनतम थी।

यात्रा का मंतव्य असाधारण था। एक शिष्य अपने समर्थ गुरु के आदेश पर अनजानी राह पर दिव्य मिलन की आशा लिए अगाध आस्थापूरित पगों के साथ आगे बढ़ रहा था। मालूम हो कि पूजा कोठरी में पहले साक्षात्कार में दादागुरु से पूज्य गुरुदेव को गोमुख से पहले एक-एक साल का निवास कर तप-साधना का निर्देश मिला था और इसके अतिरिक्त हिमालय के हृदय, जिसे अध्यात्म का ध्रुवकेंद्र कहते हैं, उसमें अपने सान्निध्य में चार-चार दिन ठहरने की बात की गई थी।

इस प्रक्रिया में इस देवात्मा क्षेत्र में उन ऋषियों से परिचित होना था, जहाँ ऋषियों ने मानवीय काया में रहते हुए देवत्व उभारा और देवमानव के रूप में ऐसी भूमिकाएँ निभाईं, जो साधन और सहयोग के अभाव में साधारण जनों के लिए निभा सकनी संभव नहीं थीं। उनसे युवा श्रीराम (पूज्य गुरुदेव) का प्रत्यक्षीकरण कराया जाना था।

परमपूज्य गुरुदेव की उत्तरकाशी से गंगोत्तरी तक की यात्रा के पहले चरण एवं इससे जुड़े प्रेरक प्रसंगों की चर्चा पिछले लेख में हो चुकी है। गंगोत्तरी के आगे गोमुख-तपोवन की ओर की यात्रा के

अहम पड़ाव और इनसे जुड़े प्रेरक प्रसंगों का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

गंगोत्तरी से भोजवासा तक संकरी पगडंडी के सहारे पूज्य गुरुदेव आगे बढ़ते चले। शीतकालीन मौसम होने के कारण नाममात्र के ही यात्री इस मार्ग में विचरण कर रहे थे। गंगोत्तरी से 14 किमी दूर कठिन मार्ग को पूरा करते हुए पूज्यवर भोजवासा चट्टी पहुँचे, जहाँ उनके रुकने की व्यवस्था हुई। यहाँ गिनती के मात्र छह यात्री रुके थे। भोजवासा चट्टी में कामचलाऊ सुविधा थी, भोजन सभी अपना-अपना साथ लेकर आए थे और नीचे की चट्टियों की तरह सुविधाएँ यहाँ नहीं थीं। सामने के हिमाच्छादित उत्तुंग हिमशिखरों से निस्सृत हो रहे हिमनदों व झरनों के दृश्य को देखकर पूज्य गुरुदेव अभिभूत हो उठे और गहरे आध्यात्मिक भावों में खो गए।

पूज्य गुरुदेव लिखते हैं—सामने पर्वत पर दृष्टि डाली तो ऐसा लगा, मानो हिमगिरी स्वयं अपने हाथों भगवान शंकर के ऊपर जल का अभिषेक करता हुआ पूजन कर रहा हो। दृश्य बड़ा ही अलौकिक था। बहुत ऊपर से एक पतली-सी जलधारा नीचे गिर रही थी। नीचे प्रकृति के निमित्त बने शिवलिंग थे, धारा उन्हीं पर गिर रही थी। गिरते समय वह धारा छींटे-छींटे हो जाती थी। सूर्य की किरण उन छींटों पर पड़कर उन्हें सात रंगों के इंद्रधनुष जैसा बना देती थीं। लगता था साक्षात् शिव विराजमान हैं, उनके शीश पर आकाश से गंगा गिर रही है और देवता सप्तरंगों से पुष्पों की वर्षा कर रहे हैं। दृश्य इतना मनमोहक था कि देखते-

देखते मन नहीं अघाता था। उस अलौकिक दृश्य को तब तक देखता ही रहा जब तक अँधेरे ने पटाक्षेप नहीं किया।

गंगोत्तरी से गोमुख के रास्ते में गुरुदेव को कोई मील का पत्थर नहीं मिला और न ही मील, फर्लांग के चिह्न मिले और वैसी ही असुविधा हुई, जैसी उत्तरकाशी से चलते समय आरंभिक दिनों में हुई थी।

पूज्य गुरुदेव के शब्दों में—यह गंगोत्तरी से गोमुख का 18 मील का रास्ता बड़ी मुश्किल से कटा, एक तो यह था भी बड़ा दुर्गम, फिर उस पर भी मील, फर्लांग जैसे साथी और मार्गदर्शकों का अभाव। आज यह पंक्तियाँ लिखते समय यह परेशानी कुछ ज्यादा अखर रही है। हालाँकि पूज्य गुरुदेव रास्ते में पग-पग पर बिखरे सौंदर्य का आनंद लेते रहे और रास्ता कंटता रहा।

उन्हीं के शब्दों में, हिमालय को सौंदर्य का सागर कहते हैं। उसमें स्नान करने से आत्मा में, अंत:प्रदेश में एक सिहरन-सी उठती है, जी करता है इस अनंत सौंदर्य राशि में अपने आप को खो क्यों न दिया जाए?

गोमुख के दर्शन कर अभिभूत पूज्य गुरुदेव गहन विचार समाधि में डूब गए, जिसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—जिस हिमस्तूप (ग्लेशियर) से गंगा की छोटी-सी धारा निकली है, वह नीले रंग की है। माता का यह उद्‌गम हिमाच्छादित गिरिशृंगों से बहुत ही शोभनीय प्रतीत होता है। धारा का दर्शन एक साधारण-से झरने के रूप में होता है। वह है तो पतली-सी ही, पर उसका वेग बहुत है।

कहते हैं कि यह धारा कैलास से, शिवजी की जटाओं से आती है। कैलास से गंगोत्तरी तक का सैकड़ों मील का रास्ता गंगा भीतर पार करती है और करोड़ों टन ग्लेशियर का दबाव सहन करना पड़ता है, इसी से धारा इतनी तीव्र निकलती है।

जो हो, भावुक हृदय के लिए यह धारा ऐसी ही लगती है, मानो माता की छातो से दूध की धारा निकलती है।

उसे पान करके इसी में निमग्न हो जाने की एक ऐसी ही हूक उठती है, जैसी कि गंगालहरी के रचयिता जगन्नाथ मिश्र के मन में उठी थी और स्वरचित गंगा लहरी के एक-एक श्लोक का गान करते हुए एक-एक कदम उठाते और अंतिम श्लोक गाते हुए भावावेश में माता की गोद में ही विलीन हो गए। कहते हैं कि स्वामी रामतीर्थ भी ऐसे ही भावावेश में गंगा में कूद पड़े थे और जलसमाधि ले ली थी। अपनी हूक मैंने पान और स्नान से ही शांत की। रास्ते भर उमंगें और भावनाएँ भी गंगाजल की भाँति हिलोरें लेती रहीं।

गंगा मैया के प्रवाह के समानांतर पूज्य गुरुदेव के चिंतन में जीवन के समग्र दर्शन की सुरसरि प्रवाहमान हो उठती है, जिसका वर्णन करते हुए पूज्यवर लिखते हैं—गंगा की सतह सबसे नीची है, इसलिए नदी-नालों का गिर सकना संभव हुआ। यदि उसने अपने को नीचा न बनाया होता, सबसे ऊपर उठकर चलती, अपना स्तर ऊँचा रखती तो फिर नदी-नाले तुच्छ होते हुए भी उसके अहंकार को सहन न करते, उससे ईर्ष्या करते और अपना मुख दूसरी ओर मोड़ लेते।

नदी-नालों की उदारता है सही, उनका त्याग प्रशंसनीय है सही, पर उन्हें इस उदारता और त्याग को चरितार्थ करने का अवसर गंगा ने अपने को नम्र बनाकर नीचे स्तर पर रखकर ही दिया है। अन्य अनेकों महत्ताएँ गंगा की हैं, पर यह एक महत्ता ही उसकी इतनी बड़ी है कि जितना भी अभिनंदन किया जाए कम है।

गोमुख से आगे की कठिन चढ़ाई को पार कर गुरुदेव तपोवन पहुँचे, जिसका मार्मिक वर्णन करते हुए गुरुदेव लिखते हैं—यहाँ से हमारे मार्गदर्शक ने आगे का पथ-प्रदर्शन किया। कई

मील की विकट चढ़ाई को पार कर तपोवन के दर्शन हुए। चारों ओर हिमाच्छादित पर्वत-शृंखलाएँ अपने सौंदर्य की अलौकिक छटा बिखेरे हुए थीं, सामने वाला शिवलिंग पर्वत का दृश्य बिलकुल ऐसा था, मानो कोई विशालकाय सर्प फन फैलाए बैठा हो।

भावना की आँखें जिन्हें प्राप्त हों, वह भुजंगधारी शिव का दर्शन अपने चर्म-चक्षुओं से यहाँ ही कर सकता है। दाहिनी ओर लालिमा लिए हुए सुमेरु हिमपर्वत हैं। कई और नीली आभा वाली चोटियाँ ब्रह्मपुरी कहलाती हैं, इससे थोड़ा और पीछे हट कर बाँई तरफ भागीरथ पर्वत है। कहते हैं कि यहीं बैठकर भगीरथ जी ने तप किया था, जिससे गंगावतरण संभव हुआ। हिमालय का यह हृदय तपोवन जितना मनोरम है, उतना ही दुर्गम भी है। इस तपोवन को स्वर्ग कहा जाता है, उसमें पहुँचकर मैंने यही अनुभव किया, मानो सचमुच स्वर्ग में ही खड़ा हूँ।

इस दिव्य क्षेत्र के अनुभव को समेटते हुए पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि ऋतुओं की प्रतिकूलता से निपटने के लिए भगवान ने उपयुक्त माध्यम रखे हैं। जब इर्द-गिर्द बरफ पड़ती है, तब भी गुफाओं के भीतर समुचित गरमी रहती है। गोमुख क्षेत्र की कुछ झाड़ियाँ जलाने से जलने लगती हैं। रात्रि को प्रकाश दिखाने के लिए ऐसी ही एक वनौषधि झिलमिल जगमगाती रहती है।

तपोवन और नंदनवन में एक शकरकंद जैसा दिखने वाला अत्यधिक मधुर स्वाद वाला देवकंद जमीन में पकता है। ऊपर तो वह घास जैसा दिखाई देता है, पर भीतर से उसे उखाड़ने पर आकार में इतना बड़ा निकलता है कि कच्चा या भूनकर एक सप्ताह तक गुजारा चल सकता है। भोजपत्र के तने की मोटी गाँठें होती हैं, उन्हें कूटकर चाय की तरह का क्वाथ बना लिया जाए तो बिना नमक के भी वह क्वाथ बड़ा स्वादिष्ट लगने लगता है।

भोजपत्र का छिलका ऐसा होता है कि उसे बिछाने, ओढ़ने और पहनने के काम में आच्छादन रूप में लिया सकता है। यह बातें यहाँ इसलिए लिखनी पड़ रही हैं कि भगवान ने हर वस्तु की असह्यता से निपटने के लिए सारी व्यवस्था कर रखी है। परेशान तो मनुष्य अपने मन की दुर्बलता से अथवा अभ्यस्त वस्तुओं की निर्भरता से होता है।

यदि मनुष्य आत्मनिर्भर रहे तो तीन-चौथाई समस्याएँ हल हो जाती हैं। एक-चौथाई के लिए अन्य विकल्प ढूँढ़े जा सकते हैं और उनके सहारे समय काटने के अभ्यास किए जा सकते हैं। मनुष्य हर स्थिति में अपने को फिट कर सकता है। उसे हैरानी तब होती है, जब वह यह चाहता है कि अन्य सब लोग उसकी मरजी के अनुरूप बन जाएँ, परिस्थितियाँ अपने अनुकूल ढल जाएँ। यदि अपने को बदल लें तो हर स्थिति से गुजरा और उल्लासयुक्त बना रहा जा सकता है।

हिमालय के दुर्गम क्षेत्र में पूज्य गुरुदेव की निर्जन कुटिया के आस-पास पेड़-पौधों के अतिरिक्त जलचर, थलचर, नभचर जीव-जंतुओं की भी बहुतायत थी, जिनके साथ भ्रमण को निकलते समय अनायास ही पूज्य गुरुदेव को भेंट करने का अवसर मिलता।

इनका जीवंत चित्रण करते हुए पूज्य गुरुदेव लिखते हैं—आज कुटिया से बाहर निकलकर इधर-उधर भ्रमण करने लगा, तो चारों ओर सहचर दिखाई देने लगे। विशाल वृक्ष पिता और पितामह जैसे दिखने लगे। कषाय बल्कलधारी भोजपत्र के पेड़ ऐसे लगते थे, मानो गेरूआ कपड़ा पहने कोई तपस्वी महात्मा खड़े होकर तप कर रहे हों। देवदारु और चीड़ के लंबे-लंबे पेड़ प्रहरी की तरह सावधान खड़े थे, मानो मनुष्य जाति में प्रचलित दुर्बुद्धि को अपने समाज में न आने देने के लिए कटिबद्ध रहने का व्रत उन्होंने लिया हुआ हो।

छोटे-छोटे लता-गुल्म नन्हे-मुन्ने बच्चे-बच्चियों की तरह पंक्ति बनाकर बैठे थे। पुष्पों में उनके सिर सुशोभित थे। वायु के झोंकों के साथ हिलते हुए वे ऐसे लगते थे, मानो प्रारंभिक पाठशाला में छोटे छात्र सिर हिला-हिलाकर पहाड़े याद कर रहे हों।

पल्लवों पर बैठे हुए पशु-पक्षी मधुर स्वर में ऐसे चहक रहे थे, मानो यक्ष-गंधर्वों की आत्माएँ खिलौने जैसे सुंदर आकार धारण करके इस वनश्री का उद्‌गम गुणगान और अभिवंदन करने के लिए ही स्वर्ग से उतरे हों। किशोर बालकों की तरह हिरन उछल-कूद मचा रहे थे। जंगली भेड़ें (बरेड़) ऐसी निश्चिंत होकर घूम रही थीं, मानो इस प्रदेश की गृहलक्ष्मी यही हों।

एक दिन गंगा के तट पर शिला पर बैठे पूज्य गुरुदेव को जीवन-साधना का मार्मिक दिशाबोध मिला, जब शिला की आत्मा पूज्य गुरुदेव से संवाद करते हुए कुछ यों बोली—"क्या तुझे आत्मा में रस नहीं आता, जो सिद्धि की बात सोचता है? भगवान के दर्शन से क्या भक्ति-भावना में कम रस है? लक्ष्यप्राप्ति से क्या यात्रा-मंजिल कम आनंददायक है? फल से क्या कर्म का माधुर्य फीका है? मिलन से क्या विरह में कम गुदगुदी है? पूज्य गुरुदेव से शिला की आत्मा ने कहा कि तू इस तथ्य को समझ।

"भगवान तो भक्त से ओत-प्रोत ही है। उसे मिलने में देरी ही क्या है? जीव को साधना का

आनंद लूटने का अवसर देने के लिए ही उसने अपने को परदे में छिपा लिया है और झाँक-झाँक कर देखता रहता है कि भक्त, भक्ति के आनंद में सराबोर हो रहा है या नहीं?

"जब वह रस में निमग्न हो जाता है तो भगवान भी आकर उसके साथ रस-नृत्य करने लगता है। सिद्धि वह है, जब भक्त कहता है—मुझे सिद्धि नहीं, भक्ति चाहिए। मुझे मिलन की नहीं विरह की अभिलाषा है। मुझे सफलता में नहीं, कर्म में आनंद है। मुझे वस्तु नहीं, भाव चाहिए। उतावली न कर, उतावली में जलन है, खीझ है, निराशा है, अस्थिरता है, निष्ठा की कमी है, क्षुद्रता है। इन दुर्गुणों के रहते कौन महान बना है?

"साधक का पहला लक्षण है—धैर्य। धैर्य की रक्षा ही भक्ति की परीक्षा है। जो अधीर हो गया, सो असफल हुआ। लोभ और भय के, निराशा और आवेश के—जो अवसर साधक के सामने आते हैं, उनमें और कुछ नहीं, केवल धैर्य परखा जाता है। तू कैसा साधक है, जिसने अभी इस पहले पाठ को भी नहीं पढ़ा।"

शिला की आत्मा ने बोलना बंद कर दिया। मेरी तंद्रा टूटी। इस उपालंभ ने अंत:करण को झकझोर डाला। पहला पाठ भी कभी नहीं पढ़ा, और चला है बड़ा साधक बनने। लज्जा और संकोच से सिर नीचा हो गया, अपने को समझाता और धिक्कारता रहा। सिर उठाया तो देखा ऊषा की लाली उदय हो रही है। उठा और नित्य कर्म की तैयारी करने लगा। ❑

जीवनमूल्यों पर आध

शिक्षा में जीवनमूल्यों का समावेश कैसे हो, सदा से ही यह एक ज्वलंत विषय रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति आने के बाद तो इस पर चर्चा और भी गहन रूप ले चुकी है और इस संदर्भ में कुछ प्रयास चल भी रहे हैं, जो एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन इतना काफी नहीं है। इस संदर्भ में और गंभीर प्रयोगों की दरकार है, जिस संदर्भ में कुछ प्रकाश इस लेख में डाला जा रहा है।

जीवनमूल्य में वे सभी गुण, अभ्यास, मानवीय विशेषताएँ एवं जीवन कौशल आते हैं, जो व्यक्तित्व को मूल्यवान बनाते हैं, बहुमूल्य मानवीय जीवन के मूल लक्ष्य को पूरा करते हुए इसे धन्य बनाते हैं और वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार कर, समग्र विकास की अवधारणा को संभव बनाते हैं। फिर जीवन जितना व्यापक है, उतना ही व्यापक जीवनमूल्यों का फलक है, जिनके स्वरूप को व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व-ब्रह्मांडीय स्तर पर निर्धारित किया जा सकता है। संक्षेप में पूरा युग इसके दायरे में आता है।

भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में ये जीवन मूल्य अंतर्निहित रहे हैं, जहाँ शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने विषय ज्ञान के साथ जीवन मूल्यों से आत्मसात् कराना रहता था। ऋषि-मुनियों द्वारा संचालित प्राचीन गुरुकुलों में इसकी समुचित व्यवस्था रहती थी।

गुरुकुल का वातावरण, वहाँ का प्राकृतिक परिवेश, गुरु का समर्थ व्यक्तित्व, श्रेष्ठ आचरण, शिक्षा में ज्ञान-विज्ञान का समग्र विधान मूल्यपरक सर्वांगीण शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति करता

रित शिक्षा

था, लेकिन कालक्रम में इसका ह्रास होता गया और विदेशी आक्रांताओं के दौर में इसमें क्रमिक रूप से गिरावट आती गई।

स्वतंत्रता के बाद इस दिशा में छिटपुट प्रयास हुए, लेकिन स्थिति व्यापक स्तर पर संतोषजनक नहीं कही जा सकती। वर्तमान शिक्षा पर नज़र डालें तो वह बहुत आश्वस्त नहीं करती। इसमें किताबी ज्ञान व रोजगार पर तो बल दिया जा रहा है, लेकिन जीवनमूल्यों पर चर्चा नदारद है।

देश के शीर्षस्थ शिक्षण संस्थानों में व्यावसायिक गुणवत्ता तो उच्च मानकों के साथ सुनिश्चित की जाती है, लेकिन जीवनमूल्यों के प्रति उदासीनता का ही भाव देखा जाता है। वहाँ इंडस्ट्री रेडी प्रोफेशनल तो तैयार किए जा रहे हैं, लेकिन लाइफ रेडी नागरिक को तैयार करने की कोई व्यवस्था नहीं है। फिर सरकारी नौकरी की भी सीमा है, मात्र 10 प्रतिशत ही युवा वहाँ खप पाते हैं।

अपनी योग्यता एवं कौशल के आधार पर 30 से 40 प्रतिशत ही शिक्षित युवा प्राइवेट नौकरियों में स्थान ले पाते हैं। शेष बेरोजगारी का दंश झेल रहे युवाओं में आधुनिक शिक्षा इतनी क्षमता एवं मनोबल विकसित नहीं कर पाती कि अपने बूते कुछ स्वाभिमान भरा कार्य कर सकें।

मूल्यहीन शिक्षा के कारण उनमें जीवन की समुचित समझ भी विकसित नहीं हो पाती। छोटे कार्यों को करने में उनको लज्जा आती है। अत: अधूरी शिक्षा का दंश झेलते युवा राष्ट्र पर बोझ बन जाते हैं, जिनकी दिशाहीनता के कारण कई तरह

की अवांछनीय गतिविधियाँ पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन के निर्बाध विकास में अवरोध बन जाती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इन पहलुओं पर विचार करते हुए एक सर्वांगीण शिक्षा की रूपरेखा तैयार की है, जिसमें कौशल विकास के साथ जीवन-मूल्यों पर बल दिया गया है। इसके अंतर्गत मूल्य प्रवाह से लेकर जीवन कौशल के पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय देश के उन चुनिंदा शिक्षण संस्थानों में से है, जिसने राष्ट्रीय शिक्षा नीति को सांगोपांग रूप में लागू किया है। ये सब पूज्य गुरुदेव की युगांतरीय दूरदृष्टि के आधार पर संभव हुआ है, जो प्रारंभ से ही शिक्षा के साथ विद्या के संगम समन्वय पर बल देती रही है।

पूज्य गुरुदेव की पहली पुस्तक—मैं क्या हूँ, से लेकर अखण्ड ज्योति एवं युगसाहित्य का हर पन्ना मूल्यशिक्षा का संदेश देता रहा है। गायत्री तपोभूमि मथुरा से लेकर युगतीर्थ शांतिकुंज से संचालित विभिन्न सत्रों, दिनचर्या एवं विशिष्ट कार्यक्रमों में इसी के प्रयोग संपन्न होते देखे जा सकते हैं। इन सब प्रयोगों को देखकर सहज रूप में समझा जा सकता है कि पूज्यवर एक समर्थ गुरु होने के साथ ही सही माने में एक श्रेष्ठतम आचार्य थे, आदर्श शिक्षक थे। जिसके आधार पर वे सदैव 'अध्यापक हैं युग निर्माता, छात्र राष्ट्र के भाग्य विधाता' के हिमायती रहे। शिक्षा व विद्या को लेकर पूरा वाङ्मय उनके सर्वांगीण शिक्षा दर्शन का संग्रहणीय संकलन कोश है।

पूज्य गुरुदेव के सपनों का मूर्तरूप देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रारंभ से ही मूल्यपरक शिक्षा के लिए समर्पित रहा है। यहाँ प्रारंभ में देव संस्कृति दिग्दर्शन से लेकर जीवन जीने की कला के

पाठ्यक्रम मूल्य शिक्षा के अभिनव प्रयोग रहे, जो वर्तमान में जीवन प्रबंधन पाठ्यक्रम के रूप में चल रहे हैं।

इसमें जीवनशैली, समय एवं तनाव प्रबंधन, बौद्धिक विकास, भावनात्मक परिष्कार, समग्र सफलता, संवाद एवं नेतृत्व कौशल, सृजनात्मक उत्कृष्टता, चरित्र निर्माण, आध्यात्मिक उत्कर्ष जैसे विषय पढ़ाए-सिखाए जाते हैं; जिनमें विद्यार्थियों में जीवन की समझ के साथ व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की आवश्यकता पूर्ण होती है।

देश भर के विभिन्न शिक्षण संस्थान, यहाँ चल रहे मूल्यपरक शिक्षा के प्रयोगों को अपना सकते हैं। इसमें मोटेतौर पर तीन घटक हैं, पहला है पाठ्यक्रम, दूसरा वातावरण और इनके केंद्र में हैं पूज्य गुरुदेव। इसके अंतर्गत विभिन्न गतिविधियाँ शामिल हो सकती हैं, जो जीवनमूल्यों का व्यावहारिक प्रशिक्षण देती हों।

प्रात:कालीन प्रार्थना, गायत्री महामंत्र उच्चारण के साथ कक्षा का शुभारंभ इसके अभिनव प्रयोग हैं, जो अधिकांश शिक्षण संस्थानों में चल रहे हैं। पुस्तकालय हर शिक्षण संस्थानों में होता है, जिसमें पाठ्यक्रम के साथ जीवन निर्माण का साहित्य भी रखा जा सकता है।

यहाँ पूज्यवर की जीवन कथा, क्रांतिधर्मी साहित्य, व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण की पुस्तकें रखी जा सकती हैं। प्रार्थना के साथ कुछ योगाभ्यास, प्राणायाम, ध्यान के प्रयोग शामिल हो सकते हैं। दीपयज्ञ के साथ जन्मदिवस का आयोजन युवाओं को संस्कारित करने का एक अभिनव प्रयोग है।

श्रमदान के साथ श्रम की गरिमा और अपने आँगन परिसर को स्वच्छ रखने के मूल्य विकसित होते हैं। साथ ही सामुदायिक गतिविधियों में आस-पास के गाँव को गोद में लेकर कुछ रचनात्मक

कार्य हो सकते हैं। एनसीसी, एनएसएस, स्काउट्स व खेल-कूद जैसी गतिविधियाँ अपने स्तर पर जीवनमूल्यों के विकास की आवश्यकता को पूरा करती हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सामाजिक परिवीक्षा भी एक अनुकरणीय पहल है।

साथ ही अधिक-से-अधिक विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसके साथ स्वाध्याय मंडल से लेकर बाल संस्कार शालाओं को भी संचालित किया जा सकता है।

महापुरुषों की जयंतियाँ, राष्ट्रीय एकता-अखंडता एवं सृजन का जीवन संदेश देती हैं। पर्व-त्योहार व मुख्य उत्सवों का आयोजन अपने सांस्कृतिक गौरव से जोड़ते हैं। बोलती दीवारों एवं सद्वाक्य लेखन के साथ भवन की हर दीवार और कमरों को प्रेरक वाक्यों से सजाया जा सकता है।

प्रज्ञा गीत से लेकर प्रेरक फिल्मों, डॉक्यूमेंट्रीज का निर्माण आज के युगानुकूल कुछ अभिनव प्रयोग हैं। शैक्षणिक भ्रमण अपने स्तर पर सहज रूप में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता को पूरा करते हैं। इस तरह मूल्य शिक्षा का समावेश शिक्षण संस्थानों में अपने स्तर पर किया जाना समय की माँग है।

इसके सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यकता है शिक्षण संस्थान में दूरदर्शी नेतृत्व की, संस्कारवान पीढ़ी को गढ़ने तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ नई पीढ़ी को सशक्त नागरिक बनाने की इच्छाशक्ति की। नैतिक पतन, आस्था एवं मूल्य संकट के इस दौर में मूल्य शिक्षा के सशक्त प्रयोग लोकतंत्र के चारों स्तंभों को सशक्त करने वाले महाप्रयोग साबित होने वाले हैं, जिनकी भूमिका युग निर्माण के, युग-परिवर्तन के महती कार्य में देखी जा सकेगी। ❑

भविष्य का धर्म—

अगर धरती के सारे मनुष्य क्लेशमुक्त हो जाएँ, अपने कष्टों से पार पा जाएँ, तो क्या होगा? होगा यह कि वह जो भी करेंगे विवेक से, अंतर्दृष्टि से एवं उचित उद्देश्य के साथ करेंगे तथा उनके सभी प्रयोजन करुणा, उदारता एवं आत्मीयता के तत्त्वों को धारण किए प्रगतिशील होंगे।

यही उदार आत्मीयता जब विश्व पटल पर परिव्याप्त हो पड़ेगी, तो धरती को स्वर्ग बनते देर न लगेगी। तब मनुष्य में देवत्व के विकास का उपक्रम पूरी गति से चल पड़ेगा तथा मनुष्य जीवन की वर्तमान कठिनाइयाँ चहुँओर समाप्त होती दिखेंगी। वर्तमान युग की सभी समस्याओं का कारण मनुष्य का अहंकार है एवं उसी का परिमार्जन अध्यात्म का विषय है।

जब यह अहंकार धर्म से, राजनीति से, विज्ञान से एवं अन्य सभी क्षेत्रों से विखंडित होता दिखाई पड़ेगा तो व्यक्ति में एक नए ही गुण-कौशल का विकास एवं नई ही आत्मीयता का जन्म होने लगेगा। यही उसके सभी प्रयोजनों को सोद्देश्य एवं उसकी संवेदना को मानव-कल्याण के वृहद लक्ष्य की ओर उन्मुख रखेगा। इससे ही वह परिणतियाँ बन पड़ेंगी, जिनकी आवश्यकता वर्तमान समाज को सर्वाधिक है।

यह एक सार्वभौम सत्य है कि जैसे ही विज्ञान के क्षेत्र में यंत्र-उपकरण एक नए दिशाबोध को लिए बन पड़ेंगे, जिसमें कि सारी सुविधाएँ मनुष्य की भौतिक उन्नति मात्र के लिए नहीं, बल्कि उसके आत्मिक प्रयोजन में सहायता के लिए होंगी—

तब स्वत: ही मनुष्य के पास अंत:प्रज्ञा का विकास होने लगेगा।

तब वह अपनी प्रज्ञा का विकास कर, उसे अंतर्मुखी बना, कलात्मक प्रयोजनों के ही निमित्त प्रयोग में लाएगा। बुद्धि पर पड़ने वाला दबाव हटने पर, मन शांति की ओर अधिक अग्रसर होगा एवं कामनाओं एवं लालसाओं से ग्रसित मनुष्य का चित्त स्वयमेव प्रकाश की ओर लौट चलेगा। बुद्धि की बहिर्गामी प्रवृत्तियाँ मशीन के सुपुर्द एवं अंतश्चिंतन का विवेकपथ अंतर्मुखी विकासक्रम का अनुगामी बनेगा। इसी को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की पृष्ठभूमि भी कहेंगे।

इसी के साथ सैन्य क्षेत्र में, जब राष्ट्रों की आपसी कटुता एवं दु:खद स्मृतियों की रूपरेखा, एक उज्ज्वल भविष्य की संभावना की देख, समाप्त होती चलेगी, तो इसके परिणामस्वरूप प्रत्येक दिशा में शांति, सुमंगल एवं सद्भावना का विकास होगा तथा मनुष्य को लड़ने-भिड़ने की, मरने-मारने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी। दूसरे शब्दों में कहें तो आपसी झगड़े प्रेम एवं उल्लास के प्रकरणों में परिणत हो जाएँगे तथा चारों ओर दिव्यता का, शुभता एवं शत्रुहीनता की भावना का उदय हो पड़ेगा।

ऐसा कैसे होगा? ऐसा मनुष्य के चिंतन के परिष्कृत होने, उसकी भावना के लोक-मंगल की दिशा में गतिशील होने एवं उसके सभी संकल्पों में एक दैवी आभा के प्रकटीकरण के फलस्वरूप होगा।

मनुष्य की दिव्यता का संदेश एवं आसुरी प्रवृत्तियों का शमन, एक जनांदोलन का रूप ले लेगा, एवं इसके सभी घटक वे लोग होंगे जो आज किसी-न-किसी व्यवस्था का दारोमदार सँभाले हैं, एवं जिनकी ख्याति भविष्य के युगनेतृत्व कर्त्ताओं में होने जा रही है।

एक उज्ज्वल भविष्य की राह में सबसे बड़ी बाधा, मनुष्य की अहंता जब तिरोहित हो जाएगी, तो वे सत्परिणाम निश्चित ही उपस्थित होंगे, जिन्हें हम आज अपने कल्पनालोक में बसाए हुए हैं। जीवन की सभी जटिलताओं की जड़ें मनुष्य का स्वार्थ एवं अहंकार ही हैं तथा इन्हें ही तिरोहित करना, भविष्य की मानवता का एकमात्र ध्येय रह

जाएगा। जब वर्तमान की विषम परिस्थितियों में हमें एक उज्ज्वल भविष्य की संभावना का दर्शन होने लगेगा, तो हमारे सभी प्रयोजन उस दिशा का नेतृत्व करेंगे, जिसमें कि हमारा जीवन उन्नतिशील एवं आत्मिक प्रगति के उच्च सोपानों पर अग्रसर दिखाई पड़ेगा।

हमें यह मानना होगा कि भविष्य का उज्ज्वल सवेरा तभी लाया जा सकता है, जब वर्तमान में उन परिस्थितियों को निर्मित करने के लिए कठोर परिश्रम एवं अध्यवसाय का परिचय दिया जाए। इसे ही दैवी दिशानिर्देश का अनुपालन भी कहेंगे तथा इसी से एक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण भी संभव है। ❑

सोशल मीडिया के मनोवेइ

वर्तमान समय में इंटरनेट जीवन का एक अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, संचार, नौकरी-पेशा, समाज-संबंध आदि सभी स्तरों पर इंटरनेट के उपयोगकर्त्ताओं में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो रही है। यद्यपि इसके उपयोग के कई महत्त्वपूर्ण लाभ हैं; जैसे—आवश्यक जानकारी त्वरित प्राप्त हो जाना, देश-दुनिया की घटनाओं की जानकारी, संदेश-संचार, समाजीकरण, ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी आदि। तब भी इसके अत्यधिक और अनावश्यक उपयोग ने अनेक समस्याओं और चुनौतियों को भी उत्पन्न कर दिया है।

युवा वर्ग इससे सबसे ज्यादा प्रभावित दिखाई देता है। वेब ब्राउजिंग, चैटिंग, ऑनलाइन समाचार देखना, ऑनलाइन शॉपिंग, ब्लॉगिंग, इंस्टेंट मैसेन्जर, फाइलें, फोटो-वीडियो आदि साझा करना, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, संगीत सुनना, ऑनलाइन गेम खेलना आदि अनेक तरह से युवा वर्ग इंटरनेट का उपयोग करता है। इनमें भी सोशल नेटवर्किंग साइट्स में युवाओं की ज्यादा ही रुचि देखी जा रही है। सोशल मीडिया किशोरों-युवाओं में लोकप्रिय बनते जा रहा है।

सोशल मीडिया वस्तुतः कई तरह की वेबसाइट्स का समूह है, जो सामाजिक इंटरफेस के लिए एक माध्यम का कार्य करता है। इसमें संचार को सक्रिय संवाद में बदलने के लिए नेटवर्क और मोबाइल तकनीकी का उपयोग किया जाता है। सोशल नेटवर्क, ब्लॉग, विकी, पॉडकास्ट, फोरम, कंटेंट ग्रुप और माइक्रोब्लॉगिंग आदि सोशल मीडिया के ही आयाम हैं।

निक प्रभाव

यह प्लेटफार्म अपने निजी विचारों-भावनाओं को दूसरों तक पहुँचाने और त्वरित प्रतिक्रिया प्राप्त करने का एक आकर्षक उपाय प्रदान करता है। सामान्य रूप से तो लोग अपने परिचितों, मित्रों, संबंधियों, सहकर्मियों आदि से जुड़ने के लिए सोशल मीडिया की सहायता लेते हैं, लेकिन डेटा प्रौद्योगिकी के इस युग में सोशल मीडिया की साइट्स में निरंतर गुणवत्ता की वृद्धि और विद्यार्थियों तथा युवाओं की इसके प्रति बढ़ती रुचि व अत्यधिक उपयोग एक गंभीर चिंता का विषय भी बन गया है।

ऐसे वर्चुअल प्लेटफार्म और वर्चुअल जीवन से युवा वर्ग जैसे-जैसे गिरफ्त में आ रहा है, उसकी वास्तविक दुनिया और उसकी वस्तुस्थिति से उतनी ही दूरी बनते जा रही है, जिसके फलस्वरूप उसका संपूर्ण जीवन नकारात्मक रूप से प्रभावित हो रहा है। उक्त समस्या को ध्यान में रखते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक अत्यंत विशिष्ट शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है।

यह शोध वर्ष—2020 में शोधार्थी अर्चना शर्मा द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० संतोष विश्वकर्मा के निर्देशन में पूर्ण किया गया है। इसका विषय है—"**इफेक्ट ऑफ सोशल मीडिया ऑन डेवलपमेन्ट ऑफ सायकोलॉजिकल प्रोब्लम्स अमन्ग एडोलिसेन्ट्स एण्ड यंग एडल्ट्स।**"

वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक रीति से संपन्न किए गए इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का उद्देश्य सोशल

मीडिया और मनोवैज्ञानिक समस्याओं के बीच संबंधों का पता लगाने तथा किशोरों-युवा वयस्कों में बढ़ती सोशल नेटवर्किंग की प्रवृत्ति, सीमाओं व इसके कारण उत्पन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं की पहचान करना है। साथ ही सोशल मीडिया साइटों के स्वस्थ उपयोग के संदर्भ में जागरूकता लाना भी है, ताकि सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव से बचा जा सके।

अपने इस शोध अध्ययन को पूरा करने के लिए शोधार्थी द्वारा कोलकाता (पश्चिम बंगाल) शहरी क्षेत्र के विद्यालयों व महाविद्यालयों के कुल 480 किशोरों (13 से 17 वर्ष आयु) तथा युवा वयस्कों (18 से 24 वर्ष आयु वर्ग) का चयन किया गया। इनमें 240 किशोरों में से समान रूप से महिला एवं पुरुष वर्ग में प्रतिभागियों को चयनित किया गया।

इसी प्रकार युवा वयस्क की संख्या भी 240 रखी गई। इसमें वाणिज्य, मानविकी और विज्ञान विषयों के विद्यार्थी सम्मिलित किए गए। यह भी ध्यान रखा गया कि सभी न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता 10वीं से उत्तीर्ण हों तथा अँगरेजी पढ़ने-लिखने की बुनियादी समझ और कंप्यूटर-इंटरनेट की भी आवश्यक जानकारी रखते हों।

शोधार्थी द्वारा प्रयोग हेतु जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं-

(i) डेरोगैटिस एवं मेलिसाराटोस द्वारा विकसित 'दि ब्रीफ सिम्पटम इन्वेन्ट्री (BSI) 1983'

(ii) स्वनिर्मित सोशियो-डेमोग्राफिक शीट एवं

(iii) शोधार्थी द्वारा विकसित 'इंटरनेट यूज क्वेश्चनेअर'।

प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व शोधार्थी द्वारा सभी चयनित विद्यार्थियों को इस शोध अध्ययन का महत्त्व एवं उद्देश्य समझाते हुए, प्रयोग में प्रयुक्त

प्रश्नावली भरने संबंधी सभी आवश्यक दिशा-निर्देशों से अवगत कराया गया। तदुपरांत प्रयोग के प्रारंभिक चरण में सामाजिक-जनसांख्यिकीय शीट और इंटरनेट उपयोग प्रश्नावली प्रशासित की गई।

प्रश्नावली से प्राप्त तथ्यों-जानकारियों के आधार पर दोनों समूहों; यथा—किशोरों एवं युवा वयस्कों को 6 उपसमूहों में विभाजित कर बीएसआई प्रश्नावली प्रशासित की गई। प्रयोग से प्राप्त आँकड़ों, तथ्यों एवं जानकारियों को एकत्रित कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में शोधार्थी ने यह पाया कि सोशल मीडिया का उपयोग युवा वर्ग के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

पुरुष एवं महिला वर्ग में दोनों—किशोरों व युवा वयस्कों के समूह में सोमेटाइजेशन, अवसाद, चिंता, मजबूरी, पारस्परिक संवेदनशीलता और भय जैसी समस्याओं की स्पष्ट सूचना प्राप्त हुई, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोशल नेटवर्किंग साइटों के अधिक उपयोग से मनोवैज्ञानिक समस्याओं के लक्षण दिखाई पड़ सकते हैं।

शोध में देखा गया कि युवा वर्ग द्वारा इंटरनेट का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों; जैसे—चैटरूम, इंस्टेंट मैसेंजर, इंटरनेट टीवी, ऑनलाइन गेमिंग, सोशल नेटवर्किंग, समाचार व संगीत आदि के लिए किया जाता है। इन सभी सेवाओं का अधिक उपयोग मानसिक स्वास्थ्य को अलग-अलग तरह से प्रभावित करता है। विशेषकर युवाओं में इंटरनेट के प्रयोग की अधिकता निश्चित ही चिंता का विषय है। यह युवाओं के व्यक्तित्व की आंतरिक क्षमताओं व उनकी सामाजिक क्षमताओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

अपने अध्ययन के प्रारंभिक तथ्यों के विश्लेषण में शोधार्थी ने यह भी पाया कि युवाओं में, विशेष

रूप से किशोरों में यह देखा गया कि वे बिना अपनी सुरक्षा पर विचार किए, अपने ऑनलाइन मित्रों से व्यक्तिगत रूप से मिलते हैं और उनके साथ कोई नहीं होता। इसके अतिरिक्त इंटरनेट की आभासी दुनिया उनके कौशल एवं अन्य क्षमताओं को भी प्रभावित करती है।

शोध परिणामों में कुछ ऐसे भी तथ्य प्राप्त हुए हैं, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया एवं इंटरनेट का उचित रीति से उपयोग युवाओं में जागरूकता पैदा करने, अपडेट रखने में, नया सीखने और साझा करने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

शोधार्थी के अनुसार स्कूल-कॉलेजों के स्तर पर छात्रों को एक मानकयुक्त 'इंटरनेट के सुरक्षित उपयोग' का शैक्षिक कार्यक्रम संचालित करना चाहिए। साथ ही ऐसे कार्यक्रमों से शिक्षकों-अभिभावकों को भी अवगत कराना चाहिए तथा शिक्षकों, कर्मचारियों एवं प्रशासन को मिलकर इंटरनेट उपयोग की निगरानी भी रखनी चाहिए। शैक्षिक उद्देश्यों के लिए इंटरनेट के उपयोग को भी सुरक्षित, प्रतिबंधित व पर्यवेक्षित किया जाना चाहिए।

शोधार्थी द्वारा सरकार से भी अपेक्षा की गई है कि सुरक्षित इंटरनेट उपयोग के संदर्भ में सामुदायिक जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। जो युवा इससे प्रभावित हो गए हैं, उनकी सहायता-सेवाओं की व्यवस्था भी होनी चाहिए, ताकि उन्हें और समस्याग्रस्त होने से बचाया जा सके।

इंटरनेट के सार्थक उपयोग करने वालों को प्रोत्साहित एवं पोषित करना चाहिए तथा समय-समय पर सर्वेक्षण द्वारा इंटरनेट के उपयोग की स्थिति का पता भी लगाने की प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त इंटरनेट के विकल्प के रूप में अन्य गतिविधियों को वित्त-पोषित कर उनके प्रति रुचि उत्पन्न करने का उपाय भी किया जा सकता है।

समाज के संगठन, कल्याणकारी संस्थाओं एवं सेवा संस्थानों की ओर से भी प्रत्येक समुदाय में इंटरनेट व सोशल मीडिया के सुरक्षित उपयोग संबंधित जागरूकता के कार्यक्रम व गतिविधियाँ संचालित करना चाहिए।

साथ ही स्वयं सहायता समूह आदि के माध्यम से अभिभावकों, परिवारों-बच्चों को प्रशिक्षित और जागरूक बनाने का अभियान भी चलाया जाना चाहिए।

इसी तरह इंटरनेट के अत्यधिक उपयोग को रोकने के लिए अन्य रचनात्मक प्रयास भी किए जाने चाहिए। शोधार्थी के उक्त सुझावों एवं शोध के परिणामों से प्राप्त निष्कर्षों को आधार बनाकर इस दिशा में सार्थक पहल करने की आवश्यकता स्पष्ट रूप से सामने आती है। यह शोध इंटरनेट की लत से ग्रस्त होते युवाओं के लिए पर्याप्त मार्गदर्शन एवं समाधान की दिशा में महत्त्वपूर्ण जानकारी व प्रेरणाओं को उपलब्ध कराने वाला एक अत्यंत उपयोगी प्रयास है। ❑

कर्म कोई-सा भी हो–साधन पाँच ही हैं

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की पंद्रहवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के चौदहवें श्लोक पर चर्चा की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए पाँच कारण बताए गए हैं और ये पाँच कारण हैं—अधिष्ठान, कर्त्ता, अनेक प्रकार के करण, विविध प्रकार की चेष्टाएँ और पाँचवाँ देव या संस्कार हैं। श्रीभगवान यहाँ अर्जुन को समझा रहे हैं कि आत्मा को अकर्त्ता बनाने वाले पाँच कारण हैं। इन पाँचों में कर्त्तापन के भाव का त्याग हो जाने से जीवात्मा का कर्मफल से संबंध विच्छेद हो जाता है। ये पाँच कारण हैं—(1) अधिष्ठान अर्थात शरीर, (2) कर्त्ता—कर्त्तापन या कर्तृत्व की भावना रखने वाला मनुष्य, (3) करण—कर्म करने के लिए प्रेरित करने वाली पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, मन, बुद्धि एवं अहंकार, (4) इन करणों की अलग-अलग चेष्टाएँ, (5) स्वभाव तथा अंतःकरण के शुभ-अशुभ संस्कार।

अधिष्ठान का अर्थ होता है—स्थान। जैसे खेती करने के लिए खेत आवश्यक होता है, वैसे ही कर्म करने के लिए सर्वप्रथम मनुष्य शरीर का होना आवश्यक है। उसके बाद मनुष्य में कर्त्तापन का भान होना जरूरी है, तत्पश्चात उन करणों या साधनों का होना जरूरी है, जो मनुष्य को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि इन सबके अतिरिक्त कर्म करने हेतु विविध प्रकार की चेष्टाओं की जरूरत है और उन संस्कारों की भी आवश्यकता है, जो चेष्टाओं को करने के लिए परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। ये सब कारक उपलब्ध हों तब कर्म का घटना सुनिश्चित हो पाता है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण अगला सूत्र अर्जुन से कहते हैं कि

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा, पञ्चैते तस्य हेतवः॥ *15*॥

शब्दविग्रह—शरीरवाङ्मनोभिः, यत्, कर्म, प्रारभते, नरः, न्याय्यम्, वा, विपरीतम्, वा, पञ्च, एते, तस्य, हेतवः।

शब्दार्थ—मनुष्य (**नरः**), मन, वाणी और शरीर से (**शरीरवाङ्मनोभिः**), शास्त्रानुकूल (**न्याय्यम्**), अथवा (**वा**), विपरीत (**विपरीतम्, वा**) जो कुछ भी कर्म (**यत्, कर्म**), करता है (**प्रारभ्यते**), उसके (**तस्य**), ये (**एते**), पाँचों (**पञ्च**), कारण हैं (**हेतवः**)।

अर्थात मनुष्य शरीर, वाणी और मन के द्वारा शास्त्रविहित अथवा शास्त्रविरुद्ध जो कुछ भी कार्य प्रारंभ करता है, उसके ये पाँचों हेतु होते हैं।

यहाँ भगवान कृष्ण, अर्जुन से कह रहे हैं कि कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ हों, धर्मयुक्त हों या अधर्मयुक्त—उनको क्रियान्वित करने के पाँच ही साधन हैं, जिनको श्रीभगवान ने इससे पूर्व के श्लोक में सूचीबद्ध किया है।

सामान्यतया संसार में कर्म को शरीर से करने पर ही कर्म माना जाता है, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर, मन और वाणी—सभी माध्यमों से कर्म को किया जाना संभव है। जैसे, सांसारिक दृष्टि से एक व्यक्ति हत्या का दोषी तब माना जाएगा, जब वह उसे करे, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति ऐसे विचार मन में रखने पर या ऐसे वचन मुख से कहने पर भी उनका दोषी हो जाता है।

महाभारत में घटनाक्रम आता है कि जब भीष्म पितामह शरशय्या पर लेटे थे तो उन्होंने भगवान कृष्ण से अपनी एक जिज्ञासा का उत्तर माँगा। उनकी जिज्ञासा यह थी कि उनकी दृष्टि से उनसे ऐसा कोई कर्म नहीं घटा था, जिसके परिणाम में उनको शरशय्या पर लेटना पड़े। उन्होंने भगवान कृष्ण से पूछा—"कृष्ण! मेरा वो कौन-सा कर्म है, जिसके कारण आज मुझे शरशय्या पर शरीर त्यागने के लिए विवश होना पड़ा?"

भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया—"पितामह! कर्म की गति बड़ी गहन है। कर्म भी तीन प्रकार के होते हैं—कृत, कारित एवं अनुमोदित। कृत का अर्थ है कि उनको करने वाला मैं स्वयं हूँ। कारित का अभिप्राय किसी और से करवाने से है और अनुमोदित का अर्थ इस भाव से है कि वो कर्म मेरे सामने घटे पर मैं उसको होने दूँ, उसके होने में मेरी मूक उपस्थिति मेरा अनुमोदन मानी जाएगी।"

श्रीभगवान ने अपने कहे को और स्पष्ट किया कि—"पितामह! यदि मैं किसी का वध करूँ तो वो मेरा कृतकर्म है, किसी से करवाऊँ तो वो मेरा कारित कर्म है और यदि वो मेरे सामने होए और मैं उसे रोकने के लिए कुछ न करूँ तो भी मैं उस कर्म का भागी बन जाऊँगा। ऐसे ही द्रौपदी के साथ घटे दुराचार को न आपने किया और न करवाया तो वो आपका कृत या कारित कर्म नहीं है, परंतु जब आपके सामने घटा तब आपने कुछ किया नहीं तो वो आपकी मूक सहमति ही आपका अनुमोदित कर्म बनकर आज शरशय्या के परिणाम के रूप में लौटी है।"

इसी तरह से भगवान इस सूत्र में कह रहे हैं कि कर्म हम उचित या अनुचित—दोनों प्रकार से करते हैं, पर चाहे कर्म नीतिसंगत हो या अनीतियुक्त—उसे करने के साधन मात्र वो ही पाँच हैं, जिन्हें स्वयं भगवान के द्वारा इससे पूर्व के श्लोक में बताया गया है। (क्रमशः)

विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ाते

गुरुसत्ता के प्रचंड तप से अनुप्राणित देव संस्कृति विश्वविद्यालय की भूमि विद्यार्थियों के रूप में पल्लवित हो रहे पौधों में न केवल नवीन प्राण का संचार करती है, वरन उनकी प्रतिभा को भी विकसित कर देती है, जिसके कारण वे संसार की विभिन्न उपलब्धियों को हस्तगत कर पाने में समर्थ हो पाते हैं। इसी क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय की टीम ने हरियाणा के हिसार में आयोजित अंतर–विश्वविद्यालय शतरंज प्रतियोगिता में भाग लिया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली विद्यार्थियों की इस टीम के सदस्यों ने प्रभावशाली प्रदर्शन करके उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल की। कुल 42 टीमों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए उन्होंने टूर्नामेंट में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। अपनी सफलता के बाद उन्हें देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से मिलने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

विगत दिनों "All India Shri Nandlal Gadiya Memorial Debate" में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिभाशाली छात्रों ने अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता और तर्कशक्ति का प्रदर्शन कर विश्वविद्यालय का मान बढ़ाया। 'क्या हमारा संविधान भारत के नागरिकों की आकांक्षाओं पर खरा उतरा है?' विषय पर आधारित राष्ट्रीय वाद–विवाद प्रतियोगिता में प्रतिभागियों ने तृतीय स्थान प्राप्त कर देव संस्कृति का परचम राष्ट्रीय स्तर पर

लहराया। प्रतियोगिता में अपनी जीत के बाद प्रतिकुलपति जी से भेंट की और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया।

उपलब्धियों के क्रम में हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग के विद्यार्थी को देवभूमि उत्तराखंड विश्वविद्यालय और सुरताल क्लब द्वारा आयोजित एक प्रतिष्ठित प्रतियोगिता DBUU आइडल 2K25 का विजेता घोषित किया गया।

इस उल्लेखनीय उपलब्धि के बाद विद्यार्थी को देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जो युवाओं को नई ऊँचाइयों तक पहुँचने और समाज में सकारात्मक योगदान देने के लिए प्रेरित करता रहता है।

इसी क्रम में बीते दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के छात्र को युवा मामले और खेल मंत्रालय के नई दिल्ली में आयोजित एनएसएस गणतंत्र दिवस परेड शिविर में उसकी असाधारण भागीदारी के लिए सम्मानित किया गया है। इस सफलता को प्राप्त करने के बाद छात्र ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी का आशीर्वाद लिया जिनके मार्गदर्शन से छात्रों को उत्कृष्टता और राष्ट्र की सेवा के लिए प्रेरणा मिलती है।

हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योग विज्ञान विभाग के विद्यार्थी ने अल्मोड़ा में आयोजित 38वें राष्ट्रीय खेल में ट्रेडिशनल योगासन प्रतियोगिता में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हुए रजत

पदक प्राप्त किया। इस गौरवमयी अवसर पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए विद्यार्थी ने अपने इस अद्वितीय प्रदर्शन को गुरुजनों और माता-पिता की प्रेरणा का परिणाम बताया। प्रतिकुलपति जी ने विद्यार्थी को उसकी इस उल्लेखनीय सफलता के लिए बधाई दी और भविष्य में और भी उच्चतम लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के भूतपूर्व छात्र डॉ० शिवम मिश्रा ने वियतनाम से एसकेएम योग के एक समूह के साथ विश्वविद्यालय का दौरा किया। अपनी यात्रा के दौरान उन्हें प्रतिकुलपति जी ने योग की शक्ति और शिक्षा के समग्र दृष्टिकोण से अवगत कराया। समूह ने विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक वातावरण और उनकी चर्चाओं के दौरान प्रदान किए गए ज्ञान के लिए प्रशंसा व्यक्त की।

बीते दिनों अंतरराष्ट्रीय योगसाधकों के एक समूह ने भारत की समृद्ध आध्यात्मिक विरासत के बारे में अपनी समझ को गहरा करने के लिए परिसर का दौरा किया। हांगकांग में प्रज्ञायोग स्कूल के संस्थापक कुलदीप जंघेला के साथ उनके छात्रों को प्रतिकुलपति जी से मिलने का अवसर मिला, जहाँ उन्होंने योग के आध्यात्मिक आयामों और आधुनिक जीवन में इसकी प्रासंगिकता पर गहन चर्चा की।

गणमान्य जनों के आगमन के क्रम में हाल ही में रिलायंस इंडस्ट्रीज के कार्यकारी निदेशक श्री निखिल आर० मेसवानी जी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती एलिना मेसवानी जी का देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी ने उनका स्वागत किया एवं उन्होंने श्रद्धेय कुलाधिपति एवं श्रद्धेया जीजी से आशीर्वाद प्राप्त किया।

विगत दिनों जस्ट आन्सर के संस्थापक और सीईओ श्री एंडी कर्टजगि का देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन हुआ। अपनी यात्रा के दौरान श्री कर्टजगि की मुलाकात प्रतिकुलपति जी से हुई। उनकी आपसी बातचीत प्रौद्योगिकी, शिक्षा और आध्यात्मिक विकास के संबंध में रही।

बीते दिनों नेपाल से आए थारु समुदाय का विश्वविद्यालय आगमन एवं प्रतिकुलपति जी से भेंट का क्रम संपन्न हुआ। साधना शिविर में भाग लेने आए सदस्यों ने आध्यात्मिक जीवन के उच्च आदर्शों को आत्मसात् करने का संकल्प लिया व परिसर की पवित्रता और दिव्यता का अनुभव किया।

हाल ही में धूत इंडस्ट्रियल फाइनेंस लिमिटेड के प्रबंध निदेशक श्री रोहित कुमार धूत जी और गैर-कार्यकारी निदेशक श्रीमती वैदेही धूत ने भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय का दौरा किया। अपनी यात्रा के दौरान उन्हें विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से मिलने का अवसर मिला। उनकी चर्चाओं में सामाजिक विकास के लक्ष्यों और सतत विकास में शिक्षा की भूमिका पर चर्चा हुई।

कुछ दिनों पूर्व इंफ्रास्ट्रक्चर, हेल्थकेयर, आईटी, ग्रीन एनर्जी जैसे क्षेत्रों में काम करने वाले प्रतिष्ठित उद्यमी और लोकप्रिय फिल्म पुष्पा 2 के निर्माता श्री अनमोल शर्मा ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय का दौरा किया। अपने दौरे के दौरान श्री शर्मा जी प्रतिकुलपति जी से मिले। गौरतलब है कि श्री शर्मा जी का परिवार गायत्री परिवार के साथ लंबे समय से जुड़ा हुआ है।

बीते दिनों पारुल विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के विद्यार्थियों को देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित

होने का सौभाग्य मिला। देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के साथ छात्रों की प्रतिकुलपति जी के साथ एक प्रेरक बातचीत ने उनका ज्ञानवर्द्धन और मार्गदर्शन भी किया।

विगत दिनों योग लाइफ सोसाइटी के पं० राधेश्याम मिश्रा जी ब्राजील के छात्रों के एक समूह के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय आए। प्रतिकुलपति जी से मिलने के साथ ही भारत की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत के संबंध में सार्थक चर्चा संपन्न हुई।

विशिष्ट अतिथियों के आगमन के क्रम में प्राच्यम चैनल के प्रमुख श्री प्रवीण चतुर्वेदी जी का भी विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ।

इस अवसर पर उन्होंने प्रतिकुलपति जी से भेंट कर संस्कृति और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रचार-प्रसार में मीडिया की भूमिका पर गहन चर्चा की। उनके साथ चर्चा में भारतीय ज्ञान परंपराओं को आधुनिक माध्यमों से जन-जन तक पहुँचाने और मीडिया की शक्ति के नए आयामों पर विचार-विमर्श हुआ।

आधुनिक तकनीक के साथ नैतिक मूल्यों को एकीकृत करने की दिशा में एक रोमांचक कदम उठाते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय और लाइन मॉन्क प्राइवेट लिमिटेड ने हाल ही में अत्याधुनिक एआई और मशीन लर्निंग परियोजनाओं पर सहयोग करने के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए।

बीते दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय और कलिनिनग्राद योग संस्थान के बीच समझौता ज्ञापन पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी और कलिनिनग्राद योग संस्थान के प्रमुख इगोर पोल्टावत्सेव ने हस्ताक्षर किए।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय और व्यातौतस मैग्नस विश्वविद्यालय लिथुआनिया ने भी शैक्षणिक आदान-प्रदान और आपसी विकास को बढ़ावा देने के लिए एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किया। व्यातौतस मैग्नस विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० जुओजास ऑगटिस द्वारा हस्ताक्षरित यह समझौता ज्ञापन संकाय, छात्रों, संयुक्त शोध परियोजनाओं और अत्याधुनिक शैक्षणिक कार्यक्रमों के विकास में सहयोग प्रदान करेगा। ❑

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

गुरुसत्ता का मिला हमें जो प्यार है

(पूर्वार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की यह मौलिकता है कि वे व्यक्ति के अंतर्मन को झकझोरते भी हैं और साथ ही साधकों-याजकों-शिष्यों को एक उत्कृष्ट पथ का पथिक बनने के लिए प्रेरित भी करते हैं। अपने एक ऐसे ही विशिष्ट उद्‌बोधन में परमवंदनीया माताजी गायत्री जयंती के पावन अवसर पर सभी गायत्री परिजनों को भावविभोर करते हुए कहती हैं कि गायत्री जयंती का पावन पर्व न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से संकल्प के जागरण का पर्व है, अपितु पूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण का दिवस होने के कारण हर गायत्री परिजन के लिए समर्पण का पर्व भी है। वंदनीया माताजी स्मरण दिलाती हैं कि पूज्य गुरुदेव ने कितने कष्ट-कठिनाइयों के मध्य दुर्द्धर्ष तपस्या करके गायत्री परिवार के विराट मिशन को खड़ा किया और अब समय उनको एक सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने का है और इस हेतु हर परिजन को उनके अधूरे संकल्प को पूर्ण करने के लिए जुट जाने की आवश्यकता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....।

भावनाएँ या विवेक

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

''ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥''

हमारे आत्मीय परिजनो! भावनाएँ तो कुछ और कहती हैं और विवेक कुछ और कहता है। अब किसकी बात सही माननी चाहिए, विवेक की या भावनाओं की? प्रत्यक्ष की या परोक्ष की? किसकी मानी जानी चाहिए? विवेक तो कहता है कि वे हर क्षण हमारे साथ हैं, हम अनुभव भी करते हैं, लेकिन आखिर भावनाओं को, हम अपने आप को किस तरीके से समझाएँ?

जो शरीर हमारे सामने था और जिसने हमें चलना सिखाया है, सोचना सिखाया, ऊँचा उठाया और जिसने भरपूर प्यार और दुलार दिया हो, उस शरीर को कैसे भुलाया जा सकता है? और हमारा जो विवेक है, वह यह कहता है कि बहाने बनाने की अपेक्षा वास्तविकता को समझना चाहिए और उन्होंने जो कार्य अधूरे छोड़े हैं, उन कार्यों के लिए अपने तन-मन से, हृदय से उसमें लग जाना चाहिए। सच्ची श्रद्धांजलि तो तभी होगी। शरीर को तो हम रोते रहे और जो हमसे उम्मीदें की गई थीं उनका क्या हुआ? उनका तो वही हुआ न कि जिस तरीके से उन दो मालियों के लिए दो बाग सौंप दिए गए। एक तो भावनाओं में डूबा रहा और उसने उसका

मटियामेट कर दिया, एक ने अपने कर्त्तव्य को समझा तो बाग को भरा-पूरा, हरा-भरा बना दिया और हमसे जो अपेक्षा की गई, आप बताइए उसमें कहीं कमी हो तो हम इसे सुधारें और इस बाग को विकसित करें।

इसका श्रेय किसको देना पड़ेगा ? श्रेय उसी को देना पड़ेगा, जो भावनाओं से ज्यादा अपने कर्त्तव्य की ओर चल रहा है। प्रत्यक्ष को न देख करके परोक्ष को देख रहा है, सर्वव्यापी को देख रहा है।

गुरुजी जब शरीर में थे, तब एक सीमा बंधन था। शरीर की आवश्यकताएँ होती हैं और जो शरीर से जुड़े हुए होते हैं उनका मोह होता है, जैसा कि मैंने अभी निवेदन किया। आप शामिल हैं, मैं भी उसी में शामिल हूँ। शरीर से जुड़े थे तो वो शरीर हमको रुला रहा है और कर्त्तव्य यह कह रहा है कि नहीं रोना कायरता है। रोने की अपेक्षा तो हमको उनके जो सौंपे हुए कार्य हैं, उनको आगे बढ़ाना है। उनकी शक्ति तो हमको मिलती ही रहेगी और अभी भी मिल रही है।

अभी आप यह सोच रहे हैं कि शक्ति नहीं मिल रही है, शक्ति मिल रही है। बिलकुल हर क्षण, हर पल यही महसूस होता है कि वे हमारे साथ हैं। आज गायत्री जयंती, गंगा दशहरा और गुरुजी की पहली पुण्यतिथि है। गंगा दशहरा और गायत्री जयंती एक ही हैं। जिस तरीके से भगीरथ ने गंगा को लाने में प्रयास किया था, जब उनकी उपासना पूरी हो गई, तपश्चर्या पूरी हो गई तो गंगा आने को तैयार हो गईं। जब गंगा आने को तैयार हो गईं तो उनने कहा कि वेग कौन सँभालेगा ? इस गंगा का वेग कौन सँभालेगा ?

गंगा-गायत्री एक हैं

वेग सँभालेगा योगी। योगिराज शिव सँभालेंगे। शिव ने अपनी जटाएँ बिखेर दीं। जटाएँ बिखेर दीं

तो उसमें से वो गंगा आती हुई, प्रवाहित होती हुई चली गईं। उन्होंने कहा कि क्या गंगा जटाओं तक सीमित हो जाएँगी ? नहीं, यह तो लोक-मंगल के लिए सारी पृथ्वी पर चाहिए। उन्होंने कहा कि गंगा का ताल्लुक लोक-कल्याण से है, जिससे कि मनुष्यों की मलिनताएँ निकलें। गंगा का उद्देश्य

नन्हा-सा बालक हर रात आकाश को निहारता रहता था। उसकी माँ उसे रोज ऐसा करते देखकर उससे बोली—"बेटा! तुम ये आकाश में क्या देखते रहते हो ?"

बेटा बोला—"माँ! मैं आकाश में सितारे गिनने का प्रयत्न करता हूँ, पर आकाश इतना विराट है कि मैं तारे गिन ही नहीं पाता।"

माँ प्यार से उसके सिर पर हाथ रखते हुए बोली—"बेटा! ये सितारे गिनने के लिए नहीं, बल्कि इसलिए बनाए गए हैं, ताकि लोग उन्हें देखकर स्वयं भी प्रकाशपूर्ण जीवन जीना सीखें।"

एक ही है और वह है शीतलता, गतिशीलता, प्रवाहित होना और मल-विक्षेपों को निकालना।

गुरुजी ने ज्ञान की गंगा को लाने में अथक प्रयास किया। इतना प्रयास किया कि शायद ही कोई कर पाए। एक दूसरे कौन ? शंकर। उसका

वेग कौन सँभालेगा ? शंकर। ज्ञान की गंगा का वेग वही सँभालेगा, जो शंकर के समान हो। दृढ़ हो। जिसको कि काँटों की परवाह न हो, विष की परवाह न हो, साँप-बिच्छुओं की परवाह न हो। वो कौन होता है ? वो शंकर होता है, शिव होता है। उन्होंने भी शिव जैसी शक्ति पाई और उस ज्ञान की गंगा को धारण किया अर्थात गायत्री को धारण किया।

आज गायत्री जयंती है न ? गंगा दशहरा है न आज ? उनकी पुण्यतिथि है न आज। उन्होंने गायत्री को धारण किया, अपने जीवन में उतारा। जौ की रोटी खा करके और छांछ पी करके चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस पुरश्चरण किए। उन्होंने अपना सारा अंत:करण धोया। देखिए उनका जीवन, कहते हैं कि मनुष्य के पाँच जीवन होते हैं अर्थात पंचकोश होते हैं। गायत्री पंचमुखी होती है। उन्होंने भी एक शरीर में रहते हुए पाँच जीवन जिए। पहला जीवन कौन-सा था ?

गुरुदेव के अनेक जीवन

उनका पहला जीवन वो था जो मनुष्यों की कष्ट, कठिनाइयाँ हैं, दु:ख हैं, उनका निवारण करना। जो उनकी आंतरिक कमजोरियाँ हैं, उनको निकालना, उनको ऊँचा उठाना यह था जीवन नंबर एक।

जीवन नंबर दो—गायत्री को उन्होंने आत्मसात् कर लिया और उस गायत्री के लिए उन्होंने यह शपथ ली, यह संकल्प लिया कि इसको चौबीस लाख व्यक्तियों तक पहुँचना चाहिए और पहुँचाने में वो सफल हुए। यह था उनका दूसरा जीवन।

उनका तीसरा जीवन साहित्यिक जीवन था। साहित्य उन्होंने इतना लिखा कि अपने वजन से भी ज्यादा लिखा और पढ़ा कितना ? अरे आप को क्या मालूम है कितना पढ़ा-कितना बताएँ आपको ?

सैकड़ों, हजारों, लाखों पुस्तकें उन्होंने पढ़ डालीं। लोग कहते हैं कि हमारे पास फुरसत नहीं है। हम आगे नहीं बढ़ सकते और वो हर दिशा में आगे बढ़ते हुए चले गए।

बड़े-से-बड़ा व्यक्ति आता हुआ चला गया और माप देता हुआ चला गया। यह विषय तो हम पूर्णतः जानते ही नहीं हैं। इस विषय को हम लेकर के बैठे हैं, जिससे हमारा रोज काम पड़ता है। हम तो समझते हैं कि वे विषयशून्य हैं। उनकी जो दलीलें थीं, उनका जो प्रतिपादन था वो अपने आप में बड़ा ही विलक्षण था। बुद्धि भी विलक्षण थी। जो भी काम उन्होंने किए सब विलक्षण-ही-विलक्षण किए और शानदार-ही-शानदार करते हुए चले गए। उसी का वो परिणाम था, जिसमें कि उन्होंने साहित्य की स्थापना की।

हमारी जो शक्तिपीठें बनी हैं, वो तप की शक्ति के द्वारा उनके प्रभाव से ही बनी हैं। लोग अपने जीवन में थोड़ा-बहुत ही कर पाते हैं, ज्यादा नहीं कर पाते, लेकिन उन्होंने अपने जीवन में 3500 शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ बना डालीं और क्या हुआ? गायत्री तपोभूमि बनी, ब्रह्मवर्चस बना, आपका शांतिकुंज बना।

अभी जो होने जा रहा है, वो कितना विशाल होने जा रहा है? आप कल्पना नहीं कर सकते कि कितना विशाल होने जा रहा है। अभी-अभी मैंने तीन शरीरों की बात की थी। स्थूलशरीर—एक, कारणशरीर—दो और सूक्ष्मशरीर—तीन। यह कितना विशाल और कितना विस्तार है, जो सारे वातावरण में घूम रहा है, सारे ब्रह्मांड में घूम रहा है और वो जो चाहें सो कराएँ।

अभी-अभी देवस्थापनाएँ हुईं थीं। आपको मालूम है गायत्री माता और यज्ञ भगवान को घर-घर पहुँचाने के लिए यह प्रेरणा मिली और यह

प्रेरणा मिलते ही क्या-से-क्या होता हुआ चला गया? बड़े-से-बड़े व्यक्ति जुड़ते हुए चले गए। अगले दिनों क्या होने वाला है? अगले दिनों 24 करोड़ भाई! लाख से कम तो हम गिनती-गिनते ही नहीं हैं। लाख से नीचे तो गिनती है ही नहीं, करोड़ों की बात करते हैं।

अभी 24 करोड़ घरों में देवस्थापना होनी है, केवल इशारा है आपका। तो आप क्या करेंगे? आप क्या कर सकते हैं, केवल आपका इशारा ही बहुत है। काम तो सब ऊपर वाला करा लेगा। जिनका कार्य है वो स्वत: ही करा लेंगे, उसमें दो राय ही नहीं है। आपने श्रद्धांजलि समारोह देखा था न? कितने लाख व्यक्ति थे? जो हमने संकल्प लिया था तो श्रद्धांजलि समारोह जिस पिता के शरीर के न रहने पर जो बच्चे नहीं आए थे वो अब आए और अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

श्रद्धांजलि भेंट का मतलब पैसा नहीं था कि आप पैसे दे जाइए। वह तो कार्य पैसे से ही चलेगा। सारा-का-सारा सरंजाम बनेगा तो पैसे से बनेगा, लेकिन उसके मूल में आपकी भावनाएँ थीं। जो कार्य आपने किया था, वह आपकी भावनाओं ने किया था और शक्ति?

शक्ति बेटा गुरुजी की मिली थी। नहीं तो एक दिन में ही पस्त पड़ जाते। ढाई महीने रह करके जिन्होंने कार्य किया वो सराहनीय है। हम सराहते हैं। और शक्ति? अरे शक्ति देने वाले ने शक्ति दी थी। आपमें क्या शक्ति है? आप तो मिट्टी के खिलौने हैं। आपके अंदर तो शक्ति का संचार होता है और जब शक्ति का संचार होता है तो पूरा हमारा जो शरीर है गतिशील होता हुआ चला जाता है। भावनाएँ हमारी उछलने लगती हैं, फिर न दिन का ख्याल रहता है न रात का ख्याल रहता है, काम-ही-काम, काम-ही-काम सवार रहता है।

एक शरीर में पाँच शरीर

बेटे, ये मैंने उस शक्ति के लिए कहा कि एक शरीर में रहते हुए उन्होंने पाँच शरीरों का काम किया। कई बार मैं ऐसा कहती रहती थी। उन्होंने कहा नहीं, अरे मैंने तो जिंदगी का सब आनंद ले लिया, अब कोई नहीं रहा। इतनी मेहनत करनी थी कि एक शरीर में रहकर के पाँच शरीरों की हमने जिंदगी जी, बड़ी शानदार जिंदगी जी। कौन जी सकता है ऐसी जिंदगी ? जो योगी होता है, वही जी सकता है, वरन हर किसी का साहस नहीं पड़ता है।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो
घृतं दुग्धाद्रसात्वयः।
एवं हि सर्ववेदानां
गायत्री सारमुच्यते।।

अर्थात जिस प्रकार पुष्पों का सार मधु, दुग्ध का सार घृत, रसों का सार दूध है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री हैं।

व्यक्ति को दुःख होता है तो दुःख में नर्वस हो जाता है और जब सुख होता है तो उसमें वह पागल हो जाता है।

योगी जो होता है, वो दोनों ही परिस्थितियों में एक-सा होता है। वो प्रसन्नता में भी उतना ही विवेक रखता है और गम में भी उतना ही विवेक रखता है। दोनों का संतुलन बैठा करके चलता है। वो दोनों का संतुलन बैठा के चलते थे। अब आपकी और हमारी बारी जो आई। जिसको कि हमने

वचन दिया है और शपथ ली है कि जब तक इस शरीर में प्राण है, तब तक अपने शरीर को हम निछावर करते रहेंगे। जब तक शरीर में से प्राण नहीं निकल जाएगा, तब तक हर कार्य के लिए हम मजबूत बनेंगे।

आज गायत्री जयंती है। आपने तो केवल माला घुमाई है। उन्होंने तो गायत्री माता को अपने हृदय में धारण किया, धारण ही नहीं किया, उसकी गोद में समा भी गए। उसी दिन जिस दिन गायत्री माता का और गंगा का प्रादुर्भाव हुआ। उसी दिन उन्होंने अपनी माँ की गोद में विश्राम ले लिया। शरीर ने विश्राम लिया है, मन ने विश्राम नहीं लिया है। कोई भी यह मत समझना कि मन ने विश्राम लिया है, नहीं उनके शरीर ने विश्राम लिया है।

मन कहाँ जाएगा? मन तो यहीं रहने वाला है। हमारे पास ही रहने वाला है। मन कहाँ जाएगा। मन तो अपनों के बीच में ही रहता है। आप भी अनुभव करते हैं, आपके जो दुःख, कष्ट, कठिनाइयाँ होती हैं उसमें आप अनुभव करते हैं कि नहीं करते हैं कि गुरुजी हमारे साथ हैं, गुरुजी हमारी रक्षा कर रहे हैं। आपको अनुभव जरूर होता होगा। जो हृदयहीन होगा, उसके लिए तो क्या कर सकते हैं?

चलिए उन्हें भगवान मत मानिए, एक शक्ति तो मानेंगे, एक महापुरुष तो मानेंगे, एक संत तो मानेंगे, एक पिता तो मानेंगे? जब आप पिता मानेंगे, तो फिर बच्चे की यह हिम्मत नहीं होती कि वो अपने पिता को भूल जाए। चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो तब भी कहीं-न-कहीं उसके मन में यह होता ही होगा कि हमारा पिता हमारी रक्षा कर रहा है।

वो गुरु पीछे थे और पिता पहले थे, पिता ही नहीं, बल्कि माँ पहले थे। माँ बड़ी कोमल होती है, सहृदय होती है। उनका हृदय बहुत ही कोमल था।

जो दुःख और पीड़ा और पतन सारे संसार में फैल रहा है, उसे वो देख करके, अनुभव करके द्रवित हो जाते थे।

इतने द्रवित होते थे कि उनकी रात यों ही गुजर जाती थी, बगैर सोए ही गुजर जाती थी। आपको पीड़ा-पतन के बारे में भान भी नहीं है और उनको ज्ञान था। उस पीड़ा-पतन को मिटाने के लिए उन्होंने अपने जीवन की लगभग आहुति दे डाली। अंतिम क्षणों तक जो उन्होंने पुस्तकें लिखीं।

अप्रतिम लेखनी के धनी

उन्होंने कहा कि ये मैं नहीं लिख रहा हूँ ये महाकाल मुझसे हाथ पकड़वा करके लिखवा रहा है और जब ये सारे देशों में और विदेशों में छपकर के सामने आएँगी तब लोग हमारा मूल्यांकन करेंगे। ऐसा ही है। जब घर-घर पहुँचेगा तो आप देखना कि दांपत्य जीवन और गृहस्थ जीवन किस तरीके से मुड़ता हुआ चला जाएगा। उनका जीवन शानदार होता हुआ चला जाएगा।

गांधी जी का नमक सत्याग्रह और सूत कातना-स्वतंत्रता आंदोलन से कोई ताल्लुक नहीं था, लेकिन परोक्ष रूप से जो भावनाएँ उसमें जुड़ी थीं, वो बड़ी गजब की थीं और वो स्वतंत्रता को साकार करके ही रहीं। इसी तरीके से जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तम दास जी मिल करके कार्य करते थे, घर-घर खादी पहुँचाते थे, वही गुरुजी का उद्देश्य रहा। ज्ञानरथ और झोला पुस्तकालय चलाने का यही उनका उद्देश्य था कि हमारे विचार ज्ञानरथ और झोला पुस्तकालय के माध्यम से घर-घर पहुँचें।

हमारे आगे के कार्यक्रम सारे-के-सारे यथावत् ही नहीं, बल्कि पूरे उत्साह के साथ और भी आगे बढ़ेंगे। यह मत समझिए कि गुरुजी आपको देख नहीं रहे हैं। तब दो आँख से देख रहे थे अब हजारों

आँखों से देखते हैं। अब हजारों आँख से अपने प्रत्येक बच्चे को परखते हैं कि हमारा बच्चा कोई निर्जीव तो नहीं हो गया है, कोई निरुत्साहित तो नहीं हो गया है। हो गया है तो इसको झकझोरना चाहिए, वो स्वयं आपको झकझोरेंगे।

हम अनुभव कर रहे हैं कि आप झकझोरे जा रहे हैं और कमी रह जाएगी तो उसकी पूर्ति यह शरीर करेगा। राजी से भी करेगा, बहला कर, पुचकार के भी कहेगा। माँ की दो आँख होती हैं, एक तो होती है प्यार की बड़ी ममता भरी होती है और दूसरी होती है उसकी सुधार की। जहाँ कहीं भी हम गड़बड़ी पाएँगे, जहाँ कहीं भी आपको हम निर्जीव पाएँगे, वहाँ हम आपको झकझोरते हुए चले जाएँगे।

यहीं हैं गुरुदेव

आप विश्वास रखिए कि गुरुजी यहीं हैं, बिलकुल यहीं हैं, आप देख नहीं पा रहे हैं। यह छवि आप देख पा रहे हैं। शरीर नहीं देख पा रहे हैं न ? शरीर से नहीं, अब हम आत्मा से जुड़े हैं। पहले शरीर से भी थे आत्मा से भी थे। अब हम विशुद्ध आत्मा से जुड़े हैं और आत्मा से जुड़े हैं तो शरीर को विवेक के पीछे दबाना पड़ेगा। जिस तरीके से ईसाई मिशन फैला, बौद्ध धर्म फैला, इसी तरीके से हम उनके उद्देश्यों के लिए, उनके लक्ष्य के लिए सतत आगे बढ़ते ही जाएँगे। हिंदुस्तान में ही नहीं, सारे संसार में फैलने जा रहे हैं।

बौद्ध धर्म सारे संसार का हो गया था, ईसाई मिशन सारे संसार का हो गया था, तो यह गायत्री परिवार सारे संसार का क्यों नहीं होगा। जो माँ हमको दुलारती है, उस माँ गायत्री के मंत्र के एक-एक अक्षर में जो शिक्षण भरा हुआ पड़ा है, हम घर-घर जा करके उसका शिक्षण, उसका उद्देश्य और लक्ष्य समझाएँगे। उनकी ठोड़ी में हाथ डालेंगे।

जो भी तरीका बनेगा अपनाएँगे। हम अपने स्वार्थों को नहीं देखेंगे कि हमको खाना मिला कि नहीं मिला।

बेटे! आपने नहीं देखा है कई बार मैं गुरुजी के साथ गई और वो परिस्थितियाँ हमारे सामने आईं,

विद्यार्जन कर घर लौटे पुत्र से पिता ने पूछा—"जीवन में तुमने क्या सीखा पुत्र?"

पुत्र बोला—"पिताजी! मैंने सीखा कि जीवन का उद्देश्य अपनी विद्या, अपने ज्ञान, अपनी विभूतियों को औरों को बाँट देना ही है। उदर भी अपने पास आए अन्न को रस और रक्त बनाकर दूसरे अंगों में बाँट देता है। नित्य नया पाने का सौभाग्य देने वाले को ही मिलता है।"

पिता समझ गए कि पुत्र जीवन जीने की विद्या सीखकर आया है।

पर मुँह से उफ तक नहीं किया। जो परिस्थितियाँ हैं, वो हैं और उन्होंने उनकी तारीफ ही की जहाँ कि सुविधाएँ नहीं हैं। सुविधाएँ देखने जाएँगे क्या? नहीं सुविधा नहीं चाहिए, चाहे पैरों में छाले क्यों न पड़ जाएँ? नहीं मिलेगा खाना, चने तो मिलेंगे। चने

जेब में डाल करके चलेंगे, लेकिन अपने लक्ष्य तक पहुँच कर रहेंगे।

यह बात निश्चित है कि हम गुरुजी से जुड़े हैं। जुड़े हैं तो हमें उन तक हर हालत में पहुँचना है और हम पहुँचेंगे। कब पहुँचेंगे ? तब पहुँचेंगे जब हमारी आस्था, हमारी निष्ठा और हमारी श्रद्धा यह कबूल करेगी कि गुरुजी ने जो हमारी सेवाएँ की थीं, उन सेवाओं का ऋण हम किस तरीके से चुकाएँ? क्यों साहब! क्या-क्या सेवाएँ की थीं ? अब यह सेवाएँ तो आपका मन बताएगा कि क्या-क्या सेवाएँ की थीं।

गुरुदेव के चमत्कार नहीं, उनका तप

नहीं तो अभी आपमें से खड़े कर दूँगी, कितनों को खड़ा कर सकती हूँ, जिनको जीवनदान मिला, कई जो अपने आर्थिक संकट से ऊपर उभरे, कितने ही मुकदमों से उभरे हैं। मैं चमत्कार बताने नहीं बैठी हुई हूँ। यहाँ आ करके आपको उनका मैं कोई चमत्कार बता रही हूँ, चमत्कार नहीं उनका व्यक्तित्व बता रही हूँ। उनका यह व्यक्तित्व था, जिससे उन्होंने अपने को इस लायक बना लिया था।

उनकी तपश्चर्या थी, उनकी शक्ति थी। जो बात कहते थे, वो सही ही होती थी। न मालूम कितने बच्चों को कहाँ-से-कहाँ उछाल करके जाने क्या-से-क्या बना दिया है। जिसकी कभी कल्पना भी किसी ने नहीं की होगी कि हम आगे चल करके ऐसे भी बन सकते हैं क्या ? ऐसा भी हमें हो सकता है क्या ? ऐसा सम्मान भी मिल सकता है। बच्चों का सम्मान है, जो बच्चे ये कल्पना करें कि यह हमारा सम्मान है, वो उनकी भूल है।

यह उस शक्ति का सम्मान है, वही शक्ति उनके अंदर भावनाएँ पैदा करती है। चूँकि वो उसका नुमाइंदा बन करके आया है। वो उसका एक

बालक बन करके आया है, प्रतिनिधि बन करके आया है, उसका स्वागत है। स्वागत उस लड़के का नहीं है, स्वागत है उस सत्ता का। वो सत्ता करा रही है और उनकी भावनाएँ कर रही हैं।

अपने लिए नहीं, समाज के लिए जिएँ

आज के दिन मैं आपसे एक ही बात कहना चाहती हूँ कि गायत्री जयंती का यह महापर्व हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। गायत्री माता के प्रादुर्भाव के श्रेष्ठ दिन के साथ एक कड़ी और जुड़ गई—गुरुजी की पुण्यतिथि। इसमें हम संकल्प लें कि हमको अपने लिए नहीं, लोक-मंगल के लिए जीना है। अपने लिए तो पशु भी जिंदा रहता है, चारा खाता है और बच्चे पैदा करता है। इसके अलावा और कौन-सी जिंदगी है?

मनुष्य की जो जिंदगी है, बड़ी शानदार जिंदगी है और वो जिंदगी लोक-मंगल के लिए है। लोकसेवी बनकर काम करने की है। जितना भी आप समय निकाल सकते हों, आप इसमें से जरूर अपना समय निकालिए। आज यही उनके लिए एक श्रद्धांजलि हो सकती है। आपकी जो भावनाएँ, आपकी जो निष्ठाएँ हैं, वही उनकी श्रद्धांजलि है। पूरे मन से हम श्रद्धांजलि देंगे और आप पाएँगे कि उनका जीवन इस मिशन को बनाने में समर्पित हो गया। वो हर कण-कण में समाये हैं और हमारे बीच में ही हैं।

अभी तो मैंने शांतिकुंज के लिए कहा था कि आप यहाँ शांतिकुंज में आए हैं तो आपको हर समय यही अनुभव होना चाहिए कि गुरुजी हमारे साथ हैं, हमारे सामने विद्यमान हैं और मैं यह भी कहूँगी कि शांतिकुंज में ही क्यों? हर बच्चे के पास, जो भी हमारे परिजन बैठे हैं, हमारे बच्चे बैठे हैं, हर बच्चे के साथ हैं। जहाँ कहीं भी आपको कोई दुःख, कष्ट, कठिनाई हो तो आप पुकारना, आपका

पिता दौड़ा आएगा और आपकी जो पहले मदद होती रही है, वही मदद अब भी होगी और आगे भी होगी। मैं दृढ़ता के साथ कह सकती हूँ कि पहले भी होती रही है, अभी भी होती रही है और आगे भी होती रहेगी।

बारी तो हमारी और आपकी है। पिता बदले में कुछ नहीं चाहता, माँ बदले में कुछ नहीं चाहती। माँ निस्स्वार्थ भाव से सेवा करती है, बच्चा पैदा होता है और बच्चे को सूखे में सुलाती है, खुद गीले में सोती है, अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए भी माँ उसका पालन-पोषण करती है। पिता उसके साधन जुटाता है। वे तो पिता भी थे और माँ भी थे। आप यह मत समझिए कि आपकी आँखें ही नम हुई होंगी। उनका भी हृदय रोया है। चूँकि उनका हृदय विशाल था।

वे सांसारिकता में तो कभी नहीं चिपके, लेकिन सारे विश्व के लिए वो तत्पर रहे। हर सुख-सुविधाओं को उन्होंने ठुकराया था। कभी उनको ईंट के तरीके से आगे आड़े नहीं आने दिया। आप भी यदि यही अनुकरण करेंगे, तो आप पाएँगे कि आप भी उस विशाल पिता की संतान में शामिल हो सकते हैं। संतान तो आप हैं ही, लेकिन जो विशालता आपके अंदर आनी चाहिए उस विशालता की थोड़ी कमी है।

विशाल हृदय बनें

हम चाहते हैं कि आपकी विशालता आगे बढ़े, आपकी उदारता आगे बढ़े, आपकी सेवा आगे बढ़े तो आपका घर-परिवार भी समुन्नत होता हुआ चला जाए। आइए श्रद्धांजलि दें उस महापुरुष को, उस संत को, उस ऋषि को जो आज हमारे बीच सशरीर नहीं हैं, आत्मा हैं, उसको हम श्रद्धांजलि दें। अभी वर्ष भर पहले उनका शरीर था। यही समय था, जिस समय मैंने अपनी

बात का अंत किया है। यही वो समय था, जब बच्चों ने गीत गाया था—माँ तेरे चरणों पर हम शीश झुकाते हैं, उन्होंने सदैव के लिए अपना शीश झुका दिया।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात खतम करती हूँ और मैं आश्वासन दिलाती हूँ कि आप सबकी ओर से और अपनी ओर से भी मैं उनको आश्वासन दिलाती हूँ कि जो कार्य अधूरे रह गए हैं, उन कार्यों को हमें गति देनी है, उनको फैलाना है, आगे बढ़ते रहना है, पीछे की ओर नहीं देखना है। वे हमेशा यही कहा करते थे, कभी मैं मथुरा छोड़ के आई थी, बच्चों की याद आ जाती थी, तो उन्होंने कहा कि नहीं पीछे की जिंदगी देखोगी तो हैरान हो जाओगी, आगे का लक्ष्य देखो।

हमको आगे जो कार्य करने हैं, वो हमें महान् कार्य करने हैं। तुमने कभी पीछे मुड़कर के देखा तो तुम्हें दु:ख-ही-दु:ख होगा। बेटे! मैंने वो बात गाँठ में बाँध ली है, जो अनायास ही याद आ जाती है। भाई भावुक हूँ, मैं क्या करूँ? भावनाओं पर ही कई बार कंट्रोल नहीं हो पाता है। नहीं हो पाता है तो नहीं हो पाता है। वो मेरी मजबूरी है, चाहे जो भी आप कह सकते हैं। वो क्षण कभी-कभी आता है, पर वैसे मैं चट्टान के तरीके से हूँ, लोहे के तरीके से खड़ी हूँ और चट्टान के तरीके से मैं मजबूत भी हूँ। मुझे कमजोर नहीं पाया जाएगा।

प्राण तो निकल सकते हैं, पर मैं कायर नहीं हो सकती। न तो मैं कायर हो सकती हूँ, न मैं बुजदिल हो सकती हूँ और न मेरे फौलादी और चट्टानी इरादों में कोई कमी आ सकती है। बच्चों के लिए मुझे सौंप गए हैं कि लाखों बच्चे जो प्यार के प्यासे हैं, जिन्हें मैं आज तुम्हारे भरोसे छोड़े जा रहा हूँ, बेटे मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि अपनी छाती से लगा करके आपको रखूँगी। आप

अनुभव करेंगे कि माँ अपनी छाती से लगा करके हमको रख रही है। बिलकुल उसी तरीके से आपको लगा करके रखूँगी, जिस तरीके से आपके पिता ने रखा था। आपके पिता ने माँ का रोल भी अदा किया और पिता का रोल भी अदा किया।

बेटे! अब वो रोल मैं करूँगी, जहाँ कहीं कमी, कमजोरियाँ आएँगी मैं पिता का भी रोल करूँगी और माँ के तरीके से मैं अपने बच्चों को समेटकर रखूँगी, प्यार से चिपकाकर रखूँगी कि कहीं मेरा एक भी बालक ऐसा न हो कि विलग हो जाए। नहीं, मैं नहीं चाहती।

मिशन का विस्तार करें

मैं तो अपने बच्चों की वृद्धि चाहती हूँ। माँ-दादी ये चाहती हैं कि हमारी वंश-परंपरा आगे बढ़े। हम चाहते हैं कि हमारा जो वंश है, जो आप लोग हैं, इसमें वृद्धि होती चली जाए। हम अपनी आँखों से देखना चाहते हैं। अभी एक पूर्णाहुति हुई है। अभी सन् 1995 में पूर्णाहुति करनी है। आगे और काम सन् 2000 में करने हैं। अरे! कितना विशाल कार्य करना है? वो विशाल कार्य कौन करेगा?

वो करेगा, आप करेंगे और हम करेंगे, लेकिन हम अपनी ओर से आपको आश्वासन दिलाते हैं कि आप इतने व्यक्ति आए हैं, भले से हम आपसे बात तो नहीं कर पाए हैं, क्षमा करना कि हम आपके कोई दुःख-कष्ट नहीं पूछ पाए हैं, आप सो गए होंगे, लेकिन हम नहीं सोये।

हर क्षण गुरुजी आपके साथ रहे, हम आपके साथ रहे हैं। आप की देख-रेख की है। आपके हर दुःख, कष्ट-कठिनाई में हम सदैव शामिल रहे हैं और सदैव शामिल रहेंगे। आप रहेंगे की नहीं रहेंगे, हमें नहीं मालूम, पर हम रहेंगे। यदि आपके अंदर भी यह भावना हो तो हमारा वजन आप हलका करिए।

अब आप एक ही कार्य कर सकते हैं कि हमारा वजन हलका करिए। वजन मतलब मिशन का विस्तार। वजन का मतलब यह नहीं है कि हमारे ऊपर कोई वजन रखा है, उसे तुम हलका करो, नहीं एक ही है कि पिता के कार्य को जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो आगे बढ़ाते हैं। आप हमारे कार्य को आगे बढ़ाइए, हमें और कुछ नहीं चाहिए। आपका एक नया पैसा नहीं चाहिए। आपकी न हमें साड़ी चाहिए, न हमें आपका पैसा चाहिए, न आपका भोजन चाहिए। हमें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, लेकिन हम तो अपने बच्चों को देखेंगे, आजमाएँगे कि हमारे बच्चे कैसे हैं? कायर हैं, बुजदिल हैं कि दिलेर हैं।

ये क्या हैं? ये समाज सेवा के लिए थोड़ा वक्त निकाल सकते हैं कि नहीं निकाल सकते हैं? या इनके पास जो समय है, केवल बीबी-बच्चों के लिए है? क्या उस पिता के लिए भी है, उस गुरु के लिए भी है, जिसने कि आपको खड़ा होना सिखाया। आपको भावनाएँ दीं, आपको निष्ठाएँ दीं, आपको श्रद्धा दी जिससे कि जहाँ कहीं भी आप जाते हैं, वहाँ विजयी हो करके आप आते हैं। तो उनका भी आप कर्ज चुकाएँगे कि नहीं चुकाएँगे, आपको कर्ज चुकाना चाहिए।

हम भी उनका कर्ज चुकाएँगे, आप भी कर्ज चुकाइए। इसके बगैर कल्याण नहीं है। मैंने बस, इतना ही आपसे निवेदन किया कि आज आत्मशोधन का दिन है। आप अपनी आत्मसमीक्षा करिए, ये आत्मसमीक्षा का पर्व है।

आज चूँकि इसमें पुण्यतिथि और जुड़ गई, अतः यह समीक्षा का दिन है, बेटे! आप समीक्षा करना और अपनी भावभरी श्रद्धांजलि हम और आप उनके लिए दें।

।। ॐ शांति।।

परिवार की प्यार भ

परिवार की प्यार भरी संरचना नवयुग की नियति है। संस्कृति, संस्कार, सांस्कृतिक मूल्य इन सभी का आधार परिवार है। नवयुग-सतयुग का आधार भी यही है। प्यार-सौहार्द-सत्कार से भरा-पूरा परिवार धरती पर स्वर्ग की कल्पना को साकार करता है। बीते हुए दशकों में आसुरी अँधियारे के सबसे ज्यादा आघात परिवार की परंपरा व प्रतिष्ठा पर हुए। दरअसल ये घात भारत और भारतीय संस्कृति की जड़ पर हुए। अन्य भू-भागों में दूसरे देशों में परिवार-परंपरा वैसे भी दुर्बल थी, लेकिन कुछ वर्षों से अपने देश में भी यही स्थिति बन गई है। संयुक्त परिवार तो अब शायद ही कहीं गिने-चुने बचे हों। एकल परिवार भी तलाकों के तालों में बंद हो रहे हैं। हमारी नई पीढ़ी के नौनिहाल अपने दादा-दादी की गोद में बैठकर देवी-देवताओं की कहानियाँ सुनने को तरस रहे हैं। अब उन्हें अपने परिवार की पुरानी पीढ़ियों का पता ही नहीं है।

परिवारों में यदि कुछ बचा रह गया है तो बस कलह-क्लेश, वैर-वैमनस्य, विद्वेष। परिवारों के प्यार के धागे, संबंधों के स्नेहसूत्र दिन-प्रतिदिन, साल-दर-साल सड़ते जा रहे हैं। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने सदा से यही कहा और लिखा कि युग-परिवर्तन के लिए सबसे पहले परिवार-परिवर्तन करना पड़ेगा। जब परिवारों की स्थिति व अवस्था बदलेगी, दिशा व दशा बदलेगी, तब बाकी सब अपने आप सुधरने-सँवरने लगेगा। अपने इसी सुविचार को सार्थक करने के लिए उन्होंने 'युग निर्माण मिशन' को परिवार का रूप-स्वरूप प्रदान किया। इसका आरंभ अखण्ड ज्योति परिवार से

हुआ, जो बाद में अपनी व्यापकता व विशालता में गायत्री परिवार बन गया।

गायत्री परिवार में अभी भी बुजुर्गों की वह पीढ़ी मौजूद है, जिन्होंने पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी से परिवार के प्रेम को पाया है। ऐसे लोग किसी एक प्रांत में नहीं हैं। ये देश के सभी प्रांतों में और विदेशों में भी हैं। उनकी अनुभूतियाँ हमें बहुत कुछ कहती हैं। ऐसी ही एक अनुभूति ग्वालियर (म.प्र.) में रहने वाले एक वरिष्ठ चिकित्सक की है। बाद में वे उच्च पद से रिटायर हुए, लेकिन यह बात जिन दिनों की है, उन दिनों वे उच्च पदस्थ चिकित्साधिकारी न होकर ग्वालियर में मेडिकल कॉलेज के छात्र थे। उन्हें जब भी अवकाश मिलता अथवा किसी भी रविवार के अवकाश में पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी का सान्निध्य पाने के लिए वे दौड़े-भागे चले आते थे।

स्वाभाविक है, ऐसे में रविवार का दिन गुरुजी-माताजी के साथ बीते, इसके लिए वे शनिवार की रात में आ जाते। देर रात उनका पहुँचना होता। उस समय मथुरा में गायत्री तपोभूमि नहीं बनी थी। केवल अखण्ड ज्योति संस्थान था। इसलिए उनका वहीं जाना होता। रात काफी हो चुकी होती थी, तब भी उनके मना करने पर भी माताजी उनके लिए जागकर खिचड़ी बनातीं, परोसतीं-खिलातीं। उनके खाकर सो जाने पर बाद में विश्राम करतीं, जबकि उन्हें प्रातः जल्दी जगना होता था। यह बात अकेले उनके साथ नहीं थी, बल्कि अन्य सभी के साथ थी। माता-पिता

का प्यार-संरक्षण उन्होंने किसी एक को नहीं, असंख्यों को दिया।

मथुरा के पुराने दिनों में गुरुदेव आने वालों को अपने साथ घुमाने ले जाते। यमुना तट पर विश्रामघाट में उन्हें अपने साथ ले गई चादर बिछाकर बिठाते। उनकी और उनके घर-परिवार की समस्याओं का समाधान करते। उन्हें विपदा-निवारण की विधियाँ सुझाते। अपने तपबल से उनकी आपत्ति का हरण एवं उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते। उनके ऐसे ही प्यार व संरक्षण से जुड़ा एक पुराना प्रसंग है।

उन दिनों बांदा के एक कार्यकर्त्ता थे, बाद में वे शांतिकुंज भी आकर रहे। उनका नाम था—बद्री प्रसाद पहाड़िया। बात जिन दिनों की है, उन दिनों वे कई तरह की परेशानियों से घिरे थे। इस संबंध में वे कई ज्योतिषाचार्यों से मिले। उनके बताए उपाय भी किए। सबने उन्हें डराया कि उन पर शनि का भारी प्रकोप है। एक दिन दोपहर बाद की बात है। वे जिस ताँगे से जा रहे थे, उसका घोड़ा बिदक गया और उस ताँगे से केवल वे ही गिरे और गिरते ही सामने आ रहे ट्रक के सामने आ गए। बस, ट्रक उन्हें छूता हुआ निकल गया। जिस किसी तरह से वे बच गए।

इस घटना ने उन्हें बहुत डरा दिया। जब घर पहुँचे, तब उसी समय उन्हें गुरुदेव का पत्र मिला। विचित्र आश्चर्य, पत्र उसी दिन का लिखा था और उसमें ताँगे और ट्रक की घटना का भी उल्लेख था। साथ में यह भी लिखा था कि आप डरें नहीं, मैं सदा आपके साथ हूँ। हो सके, तो मथुरा चले आएँ, मिलने पर आपका मन भी हलका हो जाएगा और आपकी सभी समस्याओं के कोई-न-कोई समाधान भी मिल जाएँगे।

इस पत्र को पढ़कर वे अगले दिन मथुरा के लिए चल पड़े। पहुँचते-पहुँचते उन्हें रात हो गई।

जब वे अखण्ड ज्योति संस्थान के पास पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि गली के मोड़ पर कोई व्यक्ति लालटेन लिए खड़ा है और उन्हें संबोधित करते हुए कह रहा है—"आइए पहाड़िया जी!" यह गुरु जी थे। उन्हें अचरज हुआ, आखिर बिना पहले मिले इन्होंने मुझे पहचाना कैसे? पर मिलने के बाद तो जैसे उनकी सभी समस्याएँ समाप्त हो गईं। वे गुरुदेव के प्यार व परिवार में समा गए।

बीते हुए दशकों में आसुरी अँधियारे के सबसे ज्यादा आघात परिवार की परंपरा व प्रतिष्ठा पर हुए। दरअसल ये घात भारत और भारतीय संस्कृति की जड़ पर हुए। अन्य भू-भागों में दूसरे देशों में परिवार परंपरा वैसे भी दुर्बल थी, लेकिन कुछ वर्षों से अपने देश में भी यही स्थिति बन गई है। संयुक्त परिवार तो अब शायद ही कहीं गिने-चुने बचे हों। एकल परिवार भी तलाकों के तालों में बंद हो रहे हैं। हमारी नई पीढ़ी के नौनिहाल अपने दादा-दादी की गोद में बैठकर देवी-देवताओं की कहानियाँ सुनने को तरस रहे हैं।

परिवार वही है, जो प्यार से बना है। जिसे कहीं से, किधर से भी छुआ जाए, छूने वाले को केवल परिवार के प्यार की छुअन मिले। इस बारे में बस एक घटना और आप सभी से साझा करने का मन है। तब शांतिकुंज बन रहा था। गुरुदेव-माताजी वाला हिस्सा बना हुआ था। वे ऊपर रहा करते थे। शांतिकुंज के इस प्रारंभिक निर्माण में बिहार के इंजीनियर साहब की मुख्य भूमिका थी। उन दिनों जाड़ों के दिन थे। इंजीनियर साहब इस निर्माण के लिए सीमेंट से लदा हुआ ट्रक लेकर देर

रात शांतिकुंज लौटे। तब तक लगभग डेढ़-दो बज चुके थे। आने पर उन्होंने अपना कमरा खोला और हाथ-मुँह धोकर सोने की कोशिश करने लगे।

उस समय उन्हें भूख तो बहुत लगी थी, पर खाने जैसा कुछ भी नहीं था। ऐसे में उन्होंने उठकर पानी पिया और फिर सोने की कोशिश में लग गए। तभी किसी ने उनके कमरे का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खोलने पर उन्होंने देखा कि एक लड़की खड़ी थी। यह माताजी के पास रहने वाली देवकन्याओं में से एक थी। उसने उनसे कहा—"आपको गुरुजी-माताजी ने बुलाया है।" उन्होंने उस लड़की से कहा—"अभी इस समय? इस समय तो दो बज रहे हैं।" इस पर उस कन्या ने कहा—"हाँ अभी और उन्होंने यह भी कहा है कि मैं आपको साथ लेकर आऊँ।" अब तो उनके सामने कोई चारा न था। मन में अनेकों संशय और सवाल लिए वे उसके साथ चल पड़े। थोड़ा-सा सहमते-सकुचाते जब वे गुरुजी-माताजी के कक्ष में पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि उनके सामने एक टिफिन रखा था और वे उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

उनके पहुँचते ही माताजी ने उन्हें अपने हाथों से खाना परोसा। आश्चर्य! खाना अभी तक एकदम गरम था। खाने में सब कुछ एकदम उनकी पसंद का था। साथ आई लड़की ने उनके लिए पानी आदि की व्यवस्था की। बड़े स्नेह व प्यार से गुरुजी-माताजी ने मिलकर उन्हें भोजन कराया। रास्ते के हाल-चाल पूछे। बार-बार पूछकर, उनकी इच्छा को पहचानकर माताजी ने उन्हें अच्छे से खिलाया। उन्हें बड़ा अचरज हो रहा था कि जल्दी सो जाने वाले गुरुजी-माताजी इतनी देर तक जाग रहे हैं। इस पर गुरुजी ने उनसे कहा—"सोने का क्या है बेटा! एक दिन नहीं सोएँगे।" आगे का

वाक्य माताजी ने पूरा किया—"मेरा कोई बेटा-बेटी भूखा सो जाए, यह मुझे कतई मंजूर नहीं।"

उस दिन उन्होंने जाना—'परिवार न तो प्रवचन है, न पुस्तक। न सिद्धांत है, न शास्त्र का शास्त्रार्थ। यह तो प्यार है, सिर्फ प्यार। इसे जीना पड़ता है, बाँटना पड़ता है। इसे पाया नहीं जाता, सिर्फ दिया जाता है। इसे बटोरा नहीं जाता, सिर्फ बाँटा जाता है। देने पर, बाँटने पर यह अपने आप ही सौगुना-हजार गुना होकर वापस आ जाता है।' आज जो परिवार बिखरे हैं, तो केवल इस कारण क्योंकि हम सबका

परिवार न तो प्रवचन है, न पुस्तक। न सिद्धांत है, न शास्त्र का शास्त्रार्थ। यह तो प्यार है, सिर्फ प्यार। इसे जीना पड़ता है, बाँटना पड़ता है। इसे पाया नहीं जाता, सिर्फ दिया जाता है। इसे बटोरा नहीं जाता, सिर्फ बाँटा जाता है। देने पर, बाँटने पर यह अपने आप ही सौगुना-हजार गुना होकर वापस आ जाता है। आज जो परिवार बिखरे हैं तो केवल इस कारण; क्योंकि हम सबका प्यार भी बिखर गया है। यदि परिवार आज खंडित है तो केवल इस वजह से; क्योंकि हमारे प्यार खंडित हुए हैं।

प्यार भी बिखर गया है। यदि परिवार आज खंडित है तो केवल इस वजह से; क्योंकि हमारे प्यार खंडित हुए हैं, लेकिन आने वाले वर्षों में यह स्थिति बनी नहीं रहेगी। इसमें सुनिश्चित बदलाव आएगा। मनुष्य की चेतना में आया प्रकाश, उसकी प्रकृति में आया परिवर्तन सबसे पहले परिवार की स्थिति परिवर्तित करेगा। परिवार की प्यार भरी संरचना की नवस्थापना होगी। इसी से सभी को आने वाले समय में समाज की बदलती दशा के दर्शन होंगे। ❑

सच्ची लोकसेवा

परमपूज्य गुरुदेव और माताजी की ऋषियुग्म सत्ता-शक्ति-संरक्षण हम सभी को समान रूप से आच्छादित किए हुए है। बिना किसी भय, आशंका, संदेह के हमें संपूर्ण रूप से अपने लक्ष्य की दिशा में डटे रहना है। हमारे हिस्से के कर्त्तव्य-पुरुषार्थ को और ज्यादा तीव्र-प्रखर बनाने में लगाना है।

जीवन की आंतरिक पूँजी को समृद्ध बनाने वाले उपायों में उपासना व साधना से जुड़ी बातों को विगत अंकों में साझा किया गया है। उसी का संयुक्त व अगला चरण है—आराधना। आराधना हमारी उपासना और साधना में नियोजित पुरुषार्थ की फलश्रुति है। आंतरिक जीवन में जो कुछ भी परिवर्तन एवं रूपांतरण घटित होता है, उसकी सार्थक अभिव्यक्ति का मार्ग आराधना है।

आराधना का तात्पर्य है—निस्स्वार्थ लोकसेवा। दूसरों के कल्याण और उत्थान के लिए अपनी योग्यता, प्रतिभा, समय, श्रम, पूँजी, भाव, विचार, सहयोग-सहायता, जो कुछ भी बन पड़े, जितना बन पड़े लगा देने का आदर्श एक विशेष प्रकार से परमात्मा की आराधना ही है।

सच्ची लोकसेवा ही विराट ब्रह्म की आराधना बन जाती है। लोकसेवा को ही अपना लक्ष्य बना लेने मात्र से भी व्यक्ति अपने जीवन में आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है। शास्त्रों में भी परहित को सर्वोच्च धर्म कहा गया है। पूज्य गुरुदेव ने हम-आप सभी के लिए आराधना को जीवनचर्या की अनिवार्यता में सम्मिलित रखा है।

हमारी दैनिक उपासना और साधना की सार्थकता आराधना से ही पूरी होती है। हमारे

ही है आराधना

सत्संकल्पों में लोकसेवियों के लिए यही अनुबंध है कि स्वयं को समाज का अभिन्न हिस्सा मानते हुए लोक-मंगल के कार्यों में जुट जाना। जब, जहाँ, जैसा अवसर मिले, दूसरों की भलाई करने से न चूकें। पीड़ा-पतन, व्यसन-कुरीति में डूबे समाज को उबारने का हर संभव प्रयास और पुरुषार्थ करें, यही आराधना का मार्ग है।

आराधना की सार्थकता हमारे अंत:भावों की पवित्रता और उच्चतम अवस्था से है। इसकी पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए ही उपासना और साधना का विधान है। बिना उपासना और साधना से आराधना मार्ग के अवलंबन की सुपात्रता विकसित नहीं होती। इसकी पात्रता के लिए ही तप-साधना का मार्ग है।

तप-साधना से जीवन की आंतरिक चेतना परिष्कृत-प्रकाशित होती है और उपासना-प्रार्थना से अंत:करण निर्मल, पवित्र और संवेदनायुक्त। समूचा व्यक्तित्व पुष्प की भाँति खिल उठता है, जिसकी सुगंधि और सुंदरता का लाभ स्वत: ही औरों को मिलने लगता है।

यों ही पूज्यवर ने 'अपना सुधार संसार की सबसे बड़ी सेवा' का कथन नहीं किया है, उसके पीछे का यही मर्म है कि दुनिया में सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वप्रथम किए जाने वाला जो कार्य है—वह है अपने भीतर की शुद्धि और परिष्कार। इसके पश्चात ही एक सच्चे लोकसेवी का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। हम सभी के लिए भी पूज्य गुरुदेव ने जो मार्ग दिया है, वह लोकसेवा का मार्ग है, परंतु इसका प्रारंभ स्वयंसेवा से होता है। व्यष्टि जीवन

से समष्टि जीवन में रूपांतरित होने का मार्ग यही है।

आत्मकल्याण से लोककल्याण—लोक-मंगल की यात्रा हम सभी के लिए निर्धारित है, यह हमारे लिए आत्मविकास और आत्मविस्तार का सर्वोत्तम मार्ग है। आत्मविस्तृत जीवन ही स्वयं से ऊँचा उठ कर समाज, संसार, ब्रह्मांड और फिर परमात्मा तक की यात्रा को पूर्ण कर पाता है।

हम सौभाग्यशाली हैं कि अपने इष्ट-आराध्य ने हमारे लिए जीवन-पथ का सर्वोत्तम मार्ग चयन किया है। स्वयं उन्होंने भी इसी मार्ग को अपनाया और अपने व्यक्तित्व में साकार व प्रत्यक्ष कर दिखाने का महान आदर्श स्थापित किया है। परमपूज्य गुरुदेव के जीवन आदर्शों का अनुशरण, अनुगमन करना हमारा परम सौभाग्य है।

उनके द्वारा निर्दिष्ट लोकसेवा का मार्ग ही हम सभी के लिए वरेण्य है। हम सभी इसी मार्ग के सहचर-सहगामी हैं तथा सबके लिए कसौटियाँ और पात्रता का मानदंड भी समान है। इस मार्ग पर हम खरे सोने की भाँति चमक उठें, हीरे की भाँति स्वप्रकाशित हो जाएँ, यही हमारे युग निर्माण से जुड़ने की सार्थकता का प्रमाण होगा।

वर्तमान की चुनौतियों और जिम्मेदारियों की दृष्टि से यह सर्वाधिक उपयुक्त समय व सुअवसर है कि हम अपनी वस्तुस्थिति का आत्मसमीक्षा द्वारा ठीक-ठीक सम्यक रूप से मूल्यांकन करें, देखें कि हमारी आराधना का आधार कमजोर तो नहीं पड़ रहा है ? पात्रता के गठन-सुदृढ़ता में कमी महसूस तो नहीं हो रही है ? संकल्पित मन बार-बार विकल्प की ओर जाने की धृष्टता तो नहीं कर रहा है ? यदि कहीं कोई कमी दिखे तो अविलंब अपनी उपासना-साधना की डोर को कस देवें, तभी आराधना का-लोकसेवा का मार्ग सध पाएगा।

स्वयं के साथ अपनों का भी ध्यान रखें, वे सभी, जो हमारे सहचर-सहगामी हैं-परिजन हैं। ध्यान रहे हमारे इस विश्वव्यापी विराट संगठन का सूत्र पारिवारिकता है।

पारस्परिक सहयोग, साथ, सहिष्णुता, संबल—ये हमारी पारिवारिकता के परम मूल्य हैं। अत: अपने-अपने संपर्क क्षेत्र, आस-पास के परिचितों का भी ध्यान रखें, उन्हें पिछड़ने-बिछड़ने न दें। कहीं किसी में शिथिल पड़ने, मार्ग से भटकने की संभावना तो नहीं बन रही है? यदि ऐसी स्थिति है तो उसे सँभालने और साथ बनाए रखने की जिम्मेदारी भी हम लोकसेवियों के कंधों पर ही है।

आपसी संवाद, सम्मान और प्रेम मार्ग को सुगम बना देता है। अपनों का संग व संबल हमारे साहस, संकल्प और प्रेरणा को बनाए रखने में अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। लोकसेवा का-आराधना का मार्ग उन्हीं के लिए सुगम है, जिनके भीतर गुरुनिष्ठा, समर्पण, त्याग और सेवा की भावना प्रगाढ़ हो जाती है।

आराधना की अभिव्यक्ति भले ही बाह्यजगत् में जनसेवा के कार्यों-प्रयासों के रूप में दिखाई देती है, परंतु इसका वास्तविक संबंध हृदय की संवेदना के विकास से है। यह औरों को, दुनिया को दिखाने का नहीं; प्रत्युत अंत:करण की संवेदना को व्यापक और विश्वव्यापी बनाने का उपक्रम है। अंत:संवेदना का, भावना का विस्तार जब संपूर्ण समष्टि में फैल जाता है तो वही भावना करुणा में रूपांतरित हो उठती है।

करुणा किसी व्यक्ति विशेष, समूह या समाज विशेष के लिए नहीं होती, वह सबके लिए विश्व-वसुधा के लिए समान होती है। करुणा, प्रेम, भक्ति—ये मानवीय अंतराल के उत्कर्ष की अवस्था में

प्रस्फुटित होते हैं और इनका एकमात्र ध्येय परमात्मा के प्रति सेवा और समर्पण से होता है। संपूर्ण सृष्टि को, प्राणिमात्र को परमात्मा का स्वरूप और अपनी ही अंतरात्मा का विस्तार मानकर किया जाने वाला प्रत्येक कार्य आराधना है।

लोकहित के कार्यों में 'मैं' की सत्ता कहीं नहीं-कभी नहीं, सर्वत्र उस परमात्मा की, इष्ट की, गुरु की सत्ता ही भासित होती रहे—यही आराधना का प्रमाण और परिणति है। व्यष्टि का समष्टि में बदल जाना, स्व के अर्थ का खो जाना और उसके स्थान पर 'पर' का अर्थ अर्थात परमार्थ का आ जाना ही आराधना की सिद्धि है।

जो लोग आराधना के मर्म को समझे बिना, सामान्य अर्थ में दूसरों की-समाज की सेवा-सहयोग के कार्यों में लग जाते हैं और उसी को आराधना मान बैठते हैं, वे लोक-कल्याण के मार्ग से सहज ही भटक जाते हैं।

ऐसे भटके हुए परमार्थियों के सभी कार्य—चाहे समाजसेवा करना हो, किसी की सहायता करना हो या सहयोग—केवल स्वयं की प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अहंकार की प्रतिष्ठा अथवा वासना, स्वार्थ की पूर्ति जैसे निकृष्ट प्रयोजनों के निमित्त होने लगते हैं। बिना तप, साधना, उपासना और आत्मविश्वास के परमार्थ की भावना से किए जाने वाले कार्यों को स्वार्थ में बदलते देर नहीं लगती।

लोकसेवा में यह भटकाव, अधूरापन हमारे आत्मकल्याण और लोक-कल्याण के मार्ग को सर्वथा अवरुद्ध कर अंततः पतन और बंधन का

कारण ही बनता है। सच्चे लोकसेवी ऐसे भटकाव के प्रति सदैव सचेत रहते हैं और आराधना के मार्ग पर अडिग बने रहने के लिए उपासना-साधना का अवलंबन लिए पूर्ण उत्साह से आगे बढ़ते हैं।

उपासना हृदय की पवित्रता और संवेदनशीलता के लिए, साधना कुसंस्कारों के नाश और चिंतन के परिष्कार के लिए तथा आराधना सत्कर्मों के रूप में अंत:भाव-विचारों की अभिव्यक्ति के लिए होती है। तीनों की संगति और समग्रता से ही मनुष्य में देवत्व की अवधारणा साकार होती है।

हृदय में श्रद्धा, मस्तिष्क में प्रज्ञा और कर्मों—कर्त्तव्यों में निष्ठा अर्थात श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा की कसौटियाँ इसी मार्ग से हस्तगत होती हैं। यही हमारी जीवनचर्या का गुरुनिर्दिष्ट राजमार्ग है। इस युग में लोकसेवा ही युगधर्म है और इस मार्ग पर चल पड़ना ही युग-साधना।

युग निर्माण में हमारे हिस्से यही पुरुषार्थ करने की जिम्मेदारी है। योजना एवं इच्छा ईश्वर की है, संकल्प और शक्ति-संरक्षण ऋषियों का तथा पुरुषार्थ एवं श्रेय हम सभी का—यही अपने मिशन का स्वरूप है।

पुरुषार्थ की पात्रता के लिए ही उपासना, साधना और आराधना का मार्ग मिला है। पूर्ण निष्ठा से हम सभी इस मार्ग पर आगे बढ़ें, अन्यों को प्रेरित-प्रोत्साहित करें। जन्मशताब्दी के इस महान अवसर पर सच्चे लोकसेवी के रूप में अपनी गुरुसत्ता के समक्ष स्वयं को प्रस्तुत करने का संकल्प हम सभी में जाग्रत हो, यही शुभकामना है। ❑

भाग्य जगा दो गुरुवर

फूलों-सा हम सब मुस्काएँ, सत्कर्म करें नित बढ़कर।
आत्मा के सौंदर्य बोध का, भाग्य जगा दो गुरुवर॥

तन-मन-धन सब अर्पण करके, बजे स्नेह शहनाई,
युगतम, कलुष कालिमा हरने, दीप जला, लेखनी चलाई,
साहित्य आपका अमृततुल्य है, पहुँचाएँ हम घर-घर।
आत्मा के सौंदर्य बोध का, भाग्य जगा दो गुरुवर॥

अखण्ड दीप की जन्मशताब्दी, सबको प्रकाश से भर दे,
अखण्ड ज्योति पत्रिका निरंतर, जनमानस आह्लादित कर दे,
श्रेष्ठ और शालीन युवक अब, आगे आएँ बढ़कर।
आत्मा के सौंदर्य बोध का, भाग्य जगा दो गुरुवर॥

सत्यं-शिवं-सुंदरं मंडित, मानवता मुस्काए,
सुखदा-वरदा देव संस्कृति का, ध्वज जग में फहराए,
माताजी की जन्मशताब्दी के, सबको पड़े सुनाई स्वर।
आत्मा के सौंदर्य बोध का, भाग्य जगा दो गुरुवर॥

समय विलक्षण चूक न जाएँ, कृपा बनाए रखना,
सहभागिता करें सब मिलकर, प्रखर प्रेरणा भरना,
काम-क्रोध मद लोभ-मोह से, दूर ही रखना सत्वर।
आत्मा के सौंदर्य बोध का, भाग्य जगा दो गुरुवर॥

—विष्णु शर्म